कश्मीर की वेदना

16

शारदा पुस्तकालय
(संगीतना [illegible])
क्रमांक....474-

कश्मीर की वेदना

संकलनकर्ता
द्वारकानाथ मुंशी

अनुवादक
रघुनाथ सिंह

सुरुचि प्रकाशन
केशव कुंज, नयी दिल्ली- ११००५५

प्रकाशक :

सुरुचि प्रकाशन

(सुरुचि संस्थान का प्रकाशन विभाग)

केशव कुंज, झंडेवाला,

नयी दिल्ली- ११००५५

प्रथम संस्करण : युगाब्द ५०९३ (विक्रम संवत् २०४८)

(१९९२ ई०)

मूल्य : सामान्य संस्करण १० रुपये

छायाक्षर : संयोजक (लेजर) : न्यू टैक लेज़र प्रिन्टर्स

एच- ५६बी, विजय चौक

लक्ष्मी नगर, दिल्ली- ९२

मुद्रक : राष्ट्र रचना प्रिन्टर्स,

C- ८५, गणेश नगर,

दिल्ली- ९२

विषयानुक्रमणिका

प्राक्कथन ५

कश्मीर- समस्या—संक्षेप में
—उत्पल कौल ७

कश्मीर के विच्छेदन का अर्थ है
भारत का विखंडन
—दीनानाथ रैना १५

कश्मीर के मन्दिर :
अपवित्रीकरण और भ्रामक सूचनाएँ
—द्वारकानाथ मुंशी १९

कश्मीर में हिन्दुओं का सामूहिक संहार
—विजय टिक्कू २६

अनर्थ की जड़—अनुच्छेद (धारा) ३७०
—जगमोहन ३१

कश्मीर की करुण पुकार
—(कश्मीरी शरणार्थियों की अपील) ५९

कश्मीर बचाओ मोर्चा द्वारा
राष्ट्र के नाम अपील ६६

परिशिष्ट : कुछ अति जघन्य हत्याएँ ७१

प्राक्कथन

दो वर्ष से भी अधिक समय से कश्मीर को उसी के रक्त से स्नान कराया जा रहा है। उसकी भयंकर पीड़ा का, वेदना का, कहीं कोई अन्त दिखाई नहीं देता। लोगों के मन में सबसे ऊपर तैर रहे प्रश्न हैं : किसने और किस बात ने यह स्थिति ला दी है ? इसके आयाम क्या हैं, अभिव्यक्त रूप क्या- क्या हैं ? और अब करना क्या होगा ?

इस लघु संकलन में कश्मीर के संकट और व्यथा के असंख्य पक्षों में से केवल कुछ ही को छुआ गया है। फिर भी इसमें पाठकों को सत्य तक पहुँचने और छिपे हुए संकट को पहचानने में सहायता देने के लिए यथातथ्य स्थिति और वास्तविक दृश्य प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है। यह उन लोगों द्वारा लिखे गये लेखों और अन्य सूचनाओं का संग्रह है जो या तो कश्मीर को ग्रस्त करने वाली पीड़ा के भुक्तभोगी हैं अथवा जिन्हें इस विषय का अन्तरंग एवं गहन ज्ञान है।

इसमें सम्मिलित सामग्री का एक बड़ा अंश 'कश्मीर बचाओ मोर्चा' द्वारा आयोजित जन- जागरण अभियान के लिए लिखे गये प्रचुर साहित्य में से चुना गया है और यह राष्ट्र की अखण्डता, सुरक्षा एवं स्थायित्व तथा कश्मीरी हिन्दुओं को सम्मान, सुरक्षा और न्याय दिलाने के लिए कश्मीर बचाओ मोर्चे की सांकेतिक सेवा का निरूपक एक लघु निवेदन मात्र है। भारत के ये अभागे नागरिक सदैव घोर भेदभाव के शिकार हुए हैं और अब कश्मीर घाटी में अन्ध इस्लामी उन्माद से भरे उन आतंकवादियों की बर्बरता से उत्पीड़ित हैं जिन्हें हमारे देश के कट्टर शत्रु पाकिस्तान से प्रोत्साहन और सहायता प्राप्त है तथा जिनके क्रूर उत्पात से कश्मीरी हिन्दू अपने देश भारत में ही शरणार्थी बना दिये गये हैं।

इस लघु पुस्तक में वह बहुत कुछ उद्घाटित किया गया है जिसे दीर्घ काल से बड़े यत्नपूर्वक ढककर परदे में रखा गया था अथवा राजनीतिक स्वार्थवश जिसे तोड़ा- मरोड़ा और जिसका रूप बिगाड़ा गया था।

इसमें एक रोचक सामग्री है जम्मू- कश्मीर के पूर्व- राज्यपाल श्री जगमोहन द्वारा अपनी नवीनतम सर्वाधिक विक्रीत पुस्तक 'माइ प्रेजन टर्बुलेन्स इन कश्मीर' में की गयी भारतीय संविधान की विवादास्पद धारा (अनुच्छेद) ३७० के परिणामों और उसके पक्ष- प्रतिपक्ष की समीक्षा तथा उस धारा के काले पक्ष पर डाले गये प्रकाश का सार- संक्षेप।

एक और शब्द- चित्र है जो हिन्दुओं के नरसंहार की बहुधा बतायी न जाने वाली किन्तु अत्यन्त लोमहर्षक कहानी तथा आतंकवादियों की अकल्पनीय बर्बरता के कुछ विवरणों से उभरकर घूर रहा है। ऐसी अगणित घटनाएँ समाचार- माध्यमों में दी नहीं जातीं, जबकि कश्मीर के पृथक्तावादियों द्वारा अपनायी जाने वाली यातना- पद्धति के सामने तो इतिहास के क्रूरतम आततायी भी फीके पड़ जायेंगे।

यह संकलन उन तथ्यों की केवल एक झलक मात्र प्रस्तुत कर रहा है जिन्होंने स्वर्ग- समान कश्मीर को रौरव नरक बना दिया है। उससे भी शोचनीय बात यह है कि इस चुनौती ने भारत की स्थिरता एवं सम्मान के लिए भी संकट उपस्थित कर दिया है।

आइए, हम सब मिलकर इसका सामना करने के लिए उठ खड़े हों।

—द्वारकानाथ मुंशी

२० नवम्बर१९९१ (संयोजक, कश्मीर बचाओ मोर्चा)

कश्मीर- समस्या—संक्षेप में

—उत्पल कौल

आज कश्मीर घाटी ऐसी उथल- पुथल की चपेट में है जैसी वहाँ १९४७ के बाद भी देखने में नहीं आयी। आतंकवादियों का सुस्पष्ट लक्ष्य है। वे भारत से अलग होना चाहते हैं। वे समूची घाटी पर छा गये हैं और उन्हें जम्मू प्रान्त में भी संलग्न मुस्लिम- बहुल क्षेत्रों से समर्थन मिल रहा है। राज्य तथा केन्द्र दोनों ही स्तरों पर निहित स्वार्थ अफवाहों की बैसाखी पर टिकी यह अनर्गल तथा भ्रामक सूचना फैला रहे हैं कि कश्मीर की वर्तमान उथल- पुथल का कारण है वहाँ की गरीबी, बेकारी, पिछड़ापन तथा आर्थिक गतिविधि तेज करने के लिए आवश्यक धन का अभाव। वहाँ मुस्लिम कट्टरतावाद अपना सीना तान रहा है। उसे पाकिस्तान का प्रत्यक्ष तथा सऊदी अरब एवं ईरान का अप्रत्यक्ष समर्थन मिल रहा है। अमरीकी भी सदा ही पाकिस्तान को अग्रिम सैन्य पंक्ति के राज्य के रूप में सुस्थापित करने तथा अफगान मुजाहिदों को सुसज्जित करने की आड़ में वहाँ भारी मात्रा में अति विनाशकारी तथा अति आधुनिक सैन्य- सामग्री देते रहे हैं और इस प्रकार सदा ही स्थिति को बिगाड़ने में सहायक रहे हैं। चतुर सेनानायक की भाँति जनरल जिया उल हक अमरीका से यथासंभव अधिक से अधिक सहायता ऐंठते रहे। अमरीका तथा पाकिस्तान दोनों ने भारत के विरोध की उपेक्षा की। किन्तु प्रकोप तथा कुप्रभाव की दृष्टि से भारतीय प्रशासन- तंत्र पर इस सहायता के दुष्परिणामों की अनदेखी कोई भी देशभक्त नहीं कर सकता।

पाकिस्तान भारत से प्रतिशोध लेना चाहता है। वह हमारे विरुद्ध पूर्ववर्ती अभियानों में अपने उद्देश्य प्राप्त करने में सफल नहीं हो सका था। किन्तु इस बार का प्रहार नितांत भिन्न प्रकार का है। इस बार हमारे अपने कश्मीरी मुस्लिम नौजवानों को प्रलोभन के जाल में फाँस कर तैयार किया गया है कि वे वास्तविक नियंत्रण रेखा के उस पार से हमारे विरुद्ध हथियार उठायें। पहले पंजाब में और बाद में कश्मीर में विद्रोह का समूचा तानाबाना एक सुनियोजित षड्यंत्र है और हमारे देश को खंड- खंड करने के लिए जिया उल हक के मस्तिष्क से उपजे प्रसिद्ध 'आपरेशन टोपैज' का अटूट अंग है। उसके उद्देश्य हैं :

* कश्मीर के मुस्लिम नौजवानों को भर्ती करके उन्हें अति आधुनिक हथियारों तथा उपकरणों के प्रयोग का प्रशिक्षण देना ;
* राज्य के प्रशासन तथा वहाँ की पुलिस को ध्वस्त करना ;
* भारत के साथ पूर्ण स्तर का युद्ध छेड़ने से पूर्व घाटी से चुन-चुन कर कश्मीरी पंडितों को खदेड़ देना ;
* राज्य के मुस्लिमों की शिथिलता दूर करना और उन्हें सत्तारूढ़ भारतीय प्राधिकारियों के विरुद्ध तथाकथित 'जेहाद' छेड़ने के लिए एकजुट करना।

'आपरेशन टोपैज' में न तो इस बात के लिए कोई स्थान है कि राज्य के मुस्लिमों के अलग-अलग गुट बने रहें और न ही यह कि राज्य का वर्तमान नेतृत्व ज्यों का त्यों बना रहे।

भारत के विरुद्ध इस अभियान में पाकिस्तान प्रत्यक्ष रूप से सामने नहीं आ रहा है। उसके स्थान पर पाकिस्तान में प्रशिक्षित तथा अति आधुनिक हथियारों से लैस आतंकवादी उसकी ओर से परोक्ष युद्ध कर रहे हैं। इस प्रकार भारत के कट्टरतावादियों का दुरुपयोग करके भारतीय राज्य के विरुद्ध वर्तमान आक्रमण देश की प्रादेशिक अखंडता और उसकी सम्प्रदायनिरपेक्ष नीति के लिए सबसे बड़ा संकट है।

यह बात निर्विवाद रूप से सिद्ध हो चुकी है कि पाकिस्तान की गुप्तचर सेवा आई. एस. आई. और पंजाब के आतंकवादियों तथा घाटी के मुस्लिम आतंकवादियों के बीच और पंजाब तथा कश्मीर के आतंकवादियों के बीच साँठगाँठ है। गृह-युद्ध की सी ऐसी स्थिति में अन्तरराष्ट्रीय माफिया गिरोह—विशेषतः पाकिस्तानी गिरोह—हथियारों तथा मादक पदार्थों (ड्रग्स) के तस्करों की सहायता करके अपनी दादागिरी चलाते हैं।

यह देखकर आश्चर्य होता है कि घाटी के भूतपूर्व राजनेता, जो कभी वहाँ सर्वेसर्वा थे, स्थिति का दृढ़ता से सामना करने के स्थान पर उसके साथ खिलवाड़ करते रहे। उन्होंने कश्मीरी सशस्त्र पुलिस की अकर्मण्यता तथा उदासीनता को दूर करने के लिए कुछ भी नहीं किया और उसके स्थान पर ७० कट्टर आतंकवादियों को मुक्त करने का आदेश दे दिया। ऊपर से नीचे तक का समूचा प्रशासन आतंकवादियों की जी-हजूरी कर रहा है और उनके संकेतों पर नाच रहा है। उनके कहने पर नगरों

में कर्फ्यू लगा दिया जाता है। उनके संकतों पर पाकिस्तान के स्वाधीनता- दिवस १४ अगस्त जैसे अवसरों पर 'रोशनी' करायी जाती है और समारोहों में भागीदारी की जाती है।

राज्य के भूतपूर्व राज्यपाल जगमोहन ने (टाइम्स आफ इंडिया के संपादक के नाम अगस्त १९८८ के अपने एक पत्र में) लिखा है : "संकीर्णतावाद तथा कट्टरतावाद के ढिंढोरची दिन- रात ढिंढोरा पीट रहे हैं। तोड़- फोड़ जोरों पर है। सीमा पार की घटनाओं की काली छाया फैलती जा रही है। घातक हथियार भेजे जा रहे हैं। लोकतंत्र के चेहरे को शोषण दिनोंदन विकृत कर रहा है। समूचे ताने- बाने में अनेक ढीले ताने और अनेक दुर्बल बाने दीख पड़ते हैं।"

बंदूक की भाषा सभी मुसलमानों के कानों में समान रूप से पड़ी। वह धमाकेदार भी है और स्पष्ट भी। प्रशासन तथा सुरक्षा- बलों के जिन कतिपय निष्ठावान् देशभक्तों ने चुनौती को समझा और अपना कर्तव्यपालन करने का प्रयास किया, उन्हें उनके एक मस्जिद में नमाज अदा करने के तुरंत बाद निर्ममता तथा निर्लज्जता से मौत के घाट उतार दिया गया।

राज्य की शीतकालीन राजधानी जम्मू स्थित सरकार ने इन सारी बातों को अनसुना कर दिया जबकि उसे भली भाँति पता था कि राजनीतिक नेताओं के इस कठोर व्यवहार से राष्ट्रहित पर अनेक प्रकार से कुठाराघात होगा : यह व्यवहार

* स्वयं सरकार की साख मिट्टी में मिला देगा ;
* युद्ध- पिपासा के लिए जन- समर्थन जुटाने में सहायक होगा ;
* प्रशासन तथा पुलिस में विध्वंस- वृत्ति को बल प्रदान करेगा ;
* राजनीतिक दलों के वर्तमान नेतृत्व को निरर्थक कर देगा ;
* भारत से कश्मीर की मुक्ति के लिए समर्थन जुटायेगा ;
* मस्जिदों को युद्ध- पिपासा तथा आतंकवाद के प्रसार के अड्डे बना देगा ;
* 'दुख्तराने मिल्लत' जैसे महिला जंगजू संगठनों के अधीन तथाकथित 'जेहाद' के लिए समर्थन जुटाने में महिला वालियंटियरों को प्रोत्साहन देगा ;

* मुस्लिम माँ- बाप को मानसिक रूप से इस बात के लिए तैयार करेगा कि वे जंगजुओं के दबाव में आ जायें और अपना एक- एक नर बच्चा युद्ध तथा हिंसा की संस्कृति को अर्पित कर दें ;
* आतंकवादियों को जनता के बीच अपनी साख जमाने के लिए बल प्रदान करेगा ;
* भारत के विरुद्ध 'जेहाद' के लिए धन एकत्र करने के कार्य को प्रोत्साहन देगा;
* जनसाधारण को इस बात के लिए तैयार करेगा और प्रशिक्षण देगा कि वह देश के विधान की अवहेलना करे और कानून को अपने हाथ में ले ले ;
* जनसाधारण को इस प्रकार तैयार करेगा कि आतंकवाद उसकी नस- नस में रम जाये और जब भी सरकार प्रतिशोध की कार्यवाही करे तो वह उसका सामना करे; और
* लोगों को विश्वास दिलायेगा कि वे दिन अब दूर नहीं जब 'निजामे- मुस्तफा' का सपना साकार होगा और भारतीयों को कश्मीर की भूमि से खदेड़कर निकाल दिया जायेगा ।

पर्याप्त पहले से अर्थात् ६ मास पूर्व ही मौखिक रूप से निर्देश दे दिये गये कि लोग आवश्यक वस्तुओं का पर्याप्त भंडार एकत्र कर लें ताकि आतंकवादियों अथवा सरकार द्वारा लगाये जाने वाले कर्फ्यू की लम्बी- लम्बी अवधियों का कारगर ढंग से सामना किया जा सके ।

आयोजना में आतंकवादियों की अति सतर्कता को उनकी एक सफलता माना जाता है । लोगों को हिंसा की संस्कृति का अभ्यस्त बनाने के लिए उन्होंने हवा में गोलियाँ चलायीं जबकि सड़क के किसी कोने में पुलिस मूक दर्शक की भाँति खड़ी रही और उन्होंने जन- जीवन को कोई क्षति पहुँचाये बिना सावधानी से सुविधाजनक स्थानों पर बम फोड़े । कभी- कभी उन्होंने सुरक्षा बलों के ठीक नाक के नीचे महत्त्वपूर्ण चौराहों पर भारतीय तिरंगे अथवा भारतीय संविधान को जलाया, पर इन बलों को अत्यधिक तथा गंभीर उत्तेजना के क्षणों में भी कार्यवाही करने का कोई

अधिकार नहीं था। केन्द्रीय रिजर्व पुलिस बल तथा सीमा सुरक्षा बल को स्थानीय पुलिस अधिकारियों के अधीन काम करना पड़ा, अतः वे कुछ नहीं कर सके। वे तो बस विश्व के सर्वाधिक अनुशासित बल के आत्मसंयम की प्रतिमूर्ति बनकर रह गये।

जैसे ही अलगाववादियों की युद्ध-पिपासा ने अपनी जड़ें जमा लीं, वैसे ही उन्होंने नगर के प्रमुख व्यावसायिक क्षेत्रों में केन्द्रीय रिजर्व पुलिस बल तथा सीमा सुरक्षा बल के जवानों पर अपनी बंदूकें तान दीं। १९८९ में ईदुल फितर की पूर्व-संध्या पर जब जवान अपनी बैरकों की ओर लौटने ही वाले थे कि आधे दर्जन जवानों की हत्या कर दी गयी। जवान अपने वरिष्ठ स्थानीय पुलिस अधिकारियों के आदेशों की प्रतीक्षा करते रहे, किन्तु अधिकारी गूँगों की भाँति उदासीन खड़े रहे और वे आत्मरक्षा में कार्यवाही के लिए कोई आदेश ही नहीं दे पाये! क्या यह अलगाववादियों की अनदेखी करने का अद्भुत उदाहरण नहीं है?

अलगाववादी युद्ध-पिपासा बढ़ती ही गयी और अन्ततः उसने समूची घाटी को ग्रस लिया। डरा-धमका कर शराब की दुकानें, सिनेमाघर, ब्यूटी पार्लर और क्लब बंद करा दिये गये। महिलाओं को चेतावनी दी गयी कि या तो वे बुर्का पहनकर ही बाहर निकलें, या फिर शरियत कानून के अनुसार सजा भुगतने के लिए तैयार रहें। १९८० के दशक में विदेशी धन की जो बाढ़ आ रही थी, उस पर अधिकारियों ने कोई नियंत्रण नहीं किया और उसके सदुपयोग की ओर कोई ध्यान नहीं दिया। जब आतंकवाद के प्रारंभिक दौर में कश्मीर के पुलिस उप-महानिरीक्षक पर उनके निवास-स्थान पर आक्रमण किया गया और मुठभेड़ में एक आतंकवादी मारा गया, तब भी कहा जाता है कि बेतुकी कहानियाँ गढ़ी गयीं ताकि कहीं समय से पहले आने वाली घटनाओं का भांडा न फूट जाये। इससे कोई अन्तर नहीं पड़ता कि इसे अधिकारियों की अनदेखी कहा जाये या मिलीभगत। अपराधभाव तो वहाँ था। चाहे सरकारी पक्ष के नेता हों या विरोध-पक्ष के, केवल कुछ को छोड़ कर सभी को पता था कि आगे क्या होने वाला है।

उन सबने प्रायः एक स्वर में कहा कि यह उथल-पुथल तो बेकारी, पिछड़ेपन, धनाभाव, चुनावों की धाँधली आदि से उपजी है। उनकी दृष्टि में कश्मीरी नौजवान असंतुष्ट हैं। यदि यह पूर्ण सत्य है तो क्या कारण है कि कश्मीर तथा अन्य दो

डिवीजनों अर्थात् जम्मू तथा लद्दाख के गैर- मुस्लिम नौजवानों ने घाटी के नौजवानों की भाँति हथियार नहीं उठाये ? तथ्यों के गहन विश्लेषण से पता चलेगा कि जम्मू तथा लद्दाख के अन्य दो संभागों की तुलना में कश्मीर घाटी के आर्थिक विकास का स्तर कहीं ऊँचा रहा है । राज्य के विकास में जम्मू तथा लद्दाख की तुलना में घाटी का पलड़ा निश्चय ही भारी रहा है । यही कारण है कि जम्मू तथा लद्दाख प्रदेशों के असंतुलित विकास की छानबीन करने के लिए १९७९ में सीकरी आयोग तथा १९६७ में गजेन्द्रगडकर आयोग जैसे अलग- अलग आयोगों की नियुक्ति करनी पड़ी ।

घाटी के मुस्लिम नेताओ में से कोई भी अभी तक यह मानने को तैयार नहीं है कि यह विद्रोह कट्टरतावाद, अलगाववाद तथा सम्प्रदायवाद पर आधारित है । निम्नांकित आँकड़ों से देश की जनता को पर्याप्त चेतावनी मिल सकेगी ताकि वह विभिन्न निहित स्वार्थों द्वारा सुनियोजित तथा क्रमबद्ध ढंग से चलाये जा रहे मिथ्या सूचना अभियान के जाल में न फँसे । कश्मीर घाटी की समस्या न तो बेकारी की देन है और न ही शोषण, भ्रष्टाचार तथा पिछड़ेपन की । वस्तुतः कश्मीर का आतंकवाद आर्थिक पक्षों की नहीं बल्कि कट्टरवादियों की देन है । वे इस बात का जीतोड़ प्रयास कर रहे हैं कि भारत से राज्य के संबंध टूट जायें और वह या तो पाकिस्तान में मिल जाये या फिर स्वतंत्र हो जाये और निजामे- मुस्तफा की राजनीतिक व्यवस्था को अपना ले । अतः यह पूर्ण स्तर का गृह- युद्ध है और यह भारत में राज्य के विलय की आधारशिला को ही झकझोर रहा है । यह काफिर- विरोधी अभियान है । यह विखंडन की प्रक्रिया को गति प्रदान करने वाला आन्दोलन है ताकि भारत राष्ट्र खंडित हो जाये और द्विराष्ट्र सिद्धान्त को सही सिद्ध कर दिया जाये । यह राष्ट्र के विखंडन की दिशा में अग्रसर होने के लिए समस्त विघटनकारी प्रवृतियों को उकसाने का प्रयास है । राष्ट्र के बाह्य तथा आंतरिक शत्रुओं का यह सर्वाधिक घिनौना षड्यंत्र है । यह आवश्यक है कि सरकार इससे दृढ़ता से निपटे और केवल राजनीतिक प्रक्रिया से काम नहीं चलेगा । सरकार को चाहिए कि वह अपनी सत्ता का अनुभव कराये । जानबूझ कर शिथलता दिखाने से लाभ की अपेक्षा हानि अधिक होगी । यह आवश्यक है कि भारत राष्ट्र राष्ट्र के रूप में जीना सीखे । वह ऐसे मजहबी वार का मुँहतोड़ उत्तर दे और उसे विफल करे । उसे मजहब, पंथ, विघटन, क्षेत्रवाद तथा सम्प्रदायवाद की राष्ट्रविरोधी भावनाओं को कुचलना ही होगा ।

अलगाववादी 'निजामे- मुस्तफा' के पक्षधर हैं । मुस्लिम नौजवानों ने हथियार उठा लिये हैं और वे 'भारत की गुलामी' की जंजीरों को तोड़ने के लिए जंग छेड़ने पर उतर आये हैं । वे स्वयं को भारत की धर्मनिरपेक्ष दासता से मुक्त कराने के लिए तथाकथित जेहादी जंग कर रहे हैं । वे भारत का विरोध इसलिए नहीं कर रहे हैं कि वे बेकार हैं या वे गरीब हैं या भारत ने राज्य- सरकार को असीम धनराशि नहीं दी, जैसा कि कहा जाता है । मूल अधिकारों की वंचना ने उन्हें ऐसे मार्ग की ओर नहीं धकेला है । इस्लामी सिद्धान्तों के अनुसार मुसलमानों को अधिकार केवल मुस्लिम कानून की मान्यता के अनुसार दिये जाते हैं । अधिकारों तथा कर्तव्यों के संबंध में धर्मनिरपेक्ष आधुनिक राज्य की दृष्टि में मूल या आधारभूत (अधिकारों)की जो भावना है , वह इस्लाम की दृष्टि में बुतपरस्ती तथा काफ़िर का कानून है । अतः वे इसे अपना कर्तव्य समझते हैं कि ऐसे कानून के शासन से स्वतन्त्र हो जायें और इसी के लिए कश्मीरी आतंकवादी संघर्ष कर रहे हैं ।

न केवल अति अल्पसंख्यक कश्मीरी पंडित ही अपितु अपनी देशभक्ति पर अडिग रहने वाला हर देशभक्त कष्टों की चक्की में पिस रहा है । भले ही कुछ समय के लिए राष्ट्र देशभक्त की पीड़ा की अवहेलना कर सके किन्तु आने वाली पीढ़ी उसे राष्ट्रत्व तथा सच्चे देशभक्तों के जीवन की सुरक्षा न कर पाने के लिए कदापि क्षमा नहीं करेगी ।

जहाँ तक अर्द्ध- सैनिक बलों के कार्यकरण का संबंध है, हमें इस तथ्य को ध्यान में रखना ही पड़ेगा कि वे नितांत प्रतिकूल परिस्थितियों में अपने कर्तव्य का पालन कर रहे हैं और वहाँ हर पल उनके सिर पर मृत्यु मंडराती रहती है । स्थानीय प्रशासन उनका विरोध करता है । आतंकवादियों के साथ स्थानीय पुलिस और गुप्तचर विभाग की साँठगाँठ के उदाहरण कोई अपवाद नहीं हैं । स्थानीय राजनेता उन्हें कलंकित तथा हतोत्साह करने पर तुले हुए हैं । पाकिस्तानी आइ एस आई बड़े ही लगन व जतन से भारत- विरोधी समूचा अभियान न केवल राज्य के भीतर तथा बाहर से बल्कि पाकिस्तानी धरती तथा भारत की राजधानी से चला रहा है ।

पाक- प्रशिक्षित आतंकवादियों द्वारा की गयी निर्मम हत्याओं के आगे तो यहूदियों को घोर यंत्रणा देकर नाजियों द्वारा की गयी उनकी बर्बरतापूर्ण हत्याएँ भी फीकी पड़

जाती हैं। उनकी ए के - ४७ तथा ए के - ७४ राइफिलों ने सैकड़ों निर्दोष लोगों की जानें ली हैं। बर्बरता का नंगा नाच हुआ है। घोर असहनीय यंत्रणाएँ दी गयी हैं। उत्पीड़ितों के तन पर उबलता हुमा मोम डाला गयां। उनके तन को सिगरेट के जलते हुए टुर्रों से दागा गया। उनके तन की नसों को काटकर उन्हें उसी अवस्था में पेड़ से लटका दिया गया ताकि रक्त की एक बूँद भी शेष न रहे और वे तड़प- तड़प कर मरं जायें और लोगों को सीख मिल सके कि कश्मीर में जंगजू काफिरों की कैसी दुर्गति करते हैं।

कश्मीर के विच्छेदन का अर्थ है भारत का विखंडन

—दीनानाथ रैना

देश के बारे में हमारी संकल्पना 'भारत माता' की है, पर यह संकल्पना उपासना की किसी भी पद्धति से जुड़ी हुई नहीं है। यहाँ तक कि 'हिन्दू' शब्द की परिभाषा भी इस प्रकार की गयी है :

आसिंधु सिंधु पर्यन्तः
यस्य भारत भूमिका।
मातृभूः पुण्यभूश्चैव
स वै हिन्दुः इति स्मृतः॥

यह वह भारत भूमि है जहाँ वे भी जो हिन्द के नहीं हैं, हिन्दू हो जाते हैं। हिन्दू सदैव इस बात को ध्यान में रखता है कि मातृभूमि संसार की सर्वाधिक पवित्र वस्तु है।

अतः हमारे देश में मातृभूमि समस्त कार्यकलापों की केन्द्रबिन्दु है। वह अनेक स्वाधीन राज्यों का जमघट नहीं है वरन् वह तो अनेक प्रान्तों अथवा राज्यों वाला एक विशाल देश है। भारत का वर्तमान संविधान अनेक राज्यों की रचना नहीं है। हमारे संविधान को भारत के राज्यों ने अंगीकार नहीं किया है। उसे तो हमने अर्थात् हम भारत के लोगों ने आत्मार्पित किया है। संविधान के अनुच्छेद १ के अनुसार सभी राज्य भारत के एकात्म तथा अटूट अंग हैं। किसी भी राज्य अथवा राज्य- क्षेत्र को विलग होने का रंचमात्र भी अधिकार प्राप्त नही है। स्वयं संविधान में भी इसकी कोई व्यवस्था निहित नहीं है। यदि राज्य, राज्य- क्षेत्र अथवा क्षेत्र किसी प्रकार या किसी कारणवश विलग हो जाये तो हमारे महान् देश की आधारशिला ढह जायेगी।

हमारा देश सोवियत संघ जैसा है ही नहीं। सोवियत संघ तो अनेक असम्बद्ध घटनाओं की उपज है। वह तो भानुमती के परिवार जैसा है। वहाँ साम्राज्यवादी जारों के विजय- अभियान चले। वहाँ १९१७ के वर्ष में आतंरिक क्रांति हुई और अन्ततः द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान सैन्य बल के सहारे विस्तार हुआ। सोवियत संघ के

गणराज्यों को परस्पर जोड़ने वाला न तो कोई समान आधार था और न ही राष्ट्रवाद के सहज गुण थे। इस संबंध में भारत की तुलना सोवियतों से नहीं की जा सकती। कहाँ सोना और कहाँ पीतल। भारत तो एक ऐसी सुस्पष्ट भौगोलिक इकाई है जिसे हजारों वर्षों के इतिहास की एकात्मक परम्परा ने एकसूत्र में पिरो रखा है।

जम्मू- कश्मीर तथा लद्दाख का राज्य, जिसे सामान्यतः कश्मीर कहा जाता है, भारत माता का शीश है। वह भारत के लिए न केवल भौतिक दृष्टि से बल्कि हर दृष्टि से पावन तथा अनमोल है और उसके अस्तित्व की ही आधारशिला है। प्रागैतिहासिक काल से ही कश्मीर की घाटी को शिव- धाम माना जाता रहा है जो शक्ति के ही एक अन्य रूप सती की विशाल झील के रूप में प्रकट हुआ। मैदानी भागों के हिन्दुओं की सदैव यही कामना रही है कि वे अपने जीवन को कृतार्थ करने के लिए इस घाटी के दर्शन करें। वेदों के चिन्तन- मनन एवं अध्ययन में रत ब्राह्मण यहाँ आकर बसते रहे हैं। भारतीयों के मानस में कश्मीर का बहुत ही उच्च स्थान है। कश्मीर में अति पूजनीय पावन स्थल तथा तीर्थस्थल हैं।

भारत की इस सुसम्बद्ध एकात्मता को इस्लाम के आगमन से गंभीर चुनौती का सामना करना पड़ा। इस्लाम ने सम्प्रदाय के आधार पर एक पृथक् साम्प्रदायिक पहचान बनायी जो इस देश की सुदीर्घ परम्परा के नितांत विपरीत थी। अनेक शतियों के परस्पर प्रभाव तथ आत्मसात्करण के प्रयासों के उपरान्त भी भारत इस्लाम को अपनी समावेशी एवं सहिष्णु विविधतावादी जीवन- पद्धति की परिधि में नहीं ला सका। अन्ततः १९४७ के विभाजन के रूप में भारत को घोरतम अनर्थ देखना पड़ा। अपनी दोनों भुजाओं को गँवाकर भी भारतीय संस्कृति हिन्दुत्व- प्रधान बनी रही। संसार में भारत ही एकमात्र ऐसा देश है जो युग- युग से हिंसात्मक, उग्र तथा धर्मान्धतापूर्ण आक्रमणों का प्रतिरोध कर सका है। भारत तथा मुस्लिम आक्रमणकारियों के बीच यह संघर्ष एक हजार वर्ष तक चलता रहा और अन्ततः उसकी परिणति १९४७ में हमारी मातृभूमि के विखंडन के रूप में हुई। इसके बावजूद भारत ने सम्प्रदायनिरपेक्षता का एक नया प्रयोग प्रारम्भ किया। कश्मीर एक प्रकार से भारत में इस प्रयोग की सफलता की कसौटी बन गया।

जैसा कि हम कह चुके हैं, कश्मीर भारत का शीश है। शीश को काट दो तो शेष शरीर अपनी पहचान ही गँवा देगा। कश्मीर के विच्छेद की क्या परिणति होगी ? उससे भारत न केवल अपने शीश को बल्कि अपने आत्मा को भी गँवा देगा। तब भारत विभिन्न पृथक- पृथक् राज्यों में रहने वाला जनसमूह रह जायेगा। उसका न तो कोई आत्मा होगा और न ही कोई समान पहचान। तब भारतीय होने का विचार ही विरोधाभासी दीख पड़ेगा। भारत की एकता का सूत्र टूट जायेगा।

पाकिस्तान कश्मीर में भारत के विरुद्ध परोक्ष युद्ध छेड़ ही चुका है। यह एक ऐसा युद्ध है जिसे पाकिस्तान भारतीय राज्य- क्षेत्र में भारत के जन तथा धन के सहारे लड़ रहा है। जहाँ पाकिस्तान का कुछ भी दाँव पर नहीं लगा है वहाँ भारत को अपने अस्तित्व के लिए ही खतरा पैदा हो गया है क्योंकि सामरिक दृष्टि से कश्मीर हमारे लिए सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। यह सोवियत संघ, पाकिस्तान, चीन तथा भारत की सीमाओं का मिलन- स्थल है। हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि जब १९६५ में हम पाकिस्तानी आक्रमण का सामना कर रहे थे तो चीन ने पाकिस्तान के समर्थन में हमें ७२ घंटे का अन्तिमेत्थम् दे दिया था।

भारत के हाथ से निकला कश्मीर चीन को इस बात का अवसर दे देगा कि समूचे लद्दाख प्रदेश को हथिया सके और शेष कश्मीर को अपना अड्डा बनाकर भारत पर दूर- दूर मध्य प्रदेश तथा महाराष्ट्र तक धावा बोल सके, भारतीय सेना को हिमाचल प्रदेश तथा उत्तर प्रदेश में उलझाकर रख सके और फिर उत्तरी बंगाल, असम तथा समूचे पूर्वोत्तर प्रदेश को भारत से अलग कर सके। इन आक्रमणकारियों को उन विभिन्न युद्धपिपासु टुकड़ियों का पर्याप्त समर्थन मिलेगा जिनका गठन तथा वित्त- प्रबंधन वे पहले ही प्रारम्भ कर चुके हैं। यह कोरी कल्पना नहीं है, वरन् सुप्रमाणित है।

कश्मीर में अलगाववादियों ने अपने लिए सुनिश्चित लक्ष्य निर्धारित किये हैं। उनका लक्ष्य है कि कश्मीर को वे उसकी मातृभूमि से अलग कर दें और इसके पीछे वे हाथ धोकर पड़े हुए हैं। इसे पूरा करने के लिए वे किसी को भी नहीं बख्शेंगे। घाटी से हिन्दुओं का सफाया करने के बाद अब वे सरकारी अधिकारियों की जान के पीछे पड़े हुए हैं, पर साथ ही साथ तथाकथित अत्याचारों तथा प्रतिशोधों के बारे में शोरगुल

मचा रहे हैं। इस शोरगुल को सुनने वाले ऐसे अनेक श्रोता हैं जो भारत में जन्मे हैं और तटस्थ होने का दावा करते हैं, पर वास्तव में धर्मान्ध राष्ट्रविरोधी तत्वों जैसा व्यवहार करते हैं। कुछ नेता इच्छा न होने पर भी कश्मीर को भारत में बनाये रखना चाहते हैं। उनका एकमात्र उद्देश्य यह है कि भारत में कृत्रिम धर्मनिरपेक्षता का स्वांग चलता रहे। जवाहरलाल नेहरू ने २६ जुलाई १६६२ को लिखा था, "क्या कश्मीर में कुछ हो रहा है ? उसकी भारी मुस्लिम आबादी ..."

कैसी विडम्बना ! देश पर मंडराते हुए विनाश के बारे में उसके अनेक भागों में स्पष्ट उदासीनता है। हमारा इतिहास ऐसे उदाहरणों से भरा पड़ा है जब एक ओर तो देश के एक भाग में ऐतिहासिक युद्ध लड़े जा रहे थे पर देश के अन्य भागों के लोग दूर से तमाशा देखते रहे। उनका विचार था कि वे तो काफी दूरी पर हैं और सुरक्षित हैं। पर क्या हुआ ? समूचा देश गुलामी की जंजीरों में जकड़ गया। हमारे मंदिर ध्वस्त कर दिये गये, हमारे धर्मग्रंथ जला दिये गये और हमारे समाज के दुर्बल वर्गों का धर्मान्तरण कर लिया गया। दो स्वाधीन इस्लामी देशों ने अलग होकर लाखों हिन्दुओं तथा सिखों को बेघर कर दिया। पाखंडी धर्मनिपेक्षतावादी तथा पाखंडी बुद्धिजीवी एक दिन सबेरे- सवेरे कहेंगे कि यदि कश्मीर को स्वायत्तता अथवा स्वाधीनता दे दी जाय तो उससे कौन पहाड़ टूट पड़ेगा ? वे हमें कभी यह नहीं बतायेंगे कि भारत का विभाजन साम्प्रदायिक समस्या का हल नहीं निकाल सका और वास्तव में तो उसने विघटनकारी शक्तियों की भूख को और भड़काया। जिस धर्मनिरपेक्षता को विकृत करके उसके अर्थ तथा प्रयोजन से कोसों दूर भटका दिया गया है, उसके समर्थक होने के नाते वे शनैः शनैः पर निश्चित रूप से अपने विनाश के लक्ष्य की ओर बढ़ते ही जा रहे हैं। यह विकृत धर्मनिरपेक्षता और कुछ नहीं है, विभाजन के पश्चात् इस्लामी ध्येय को पूरा करने की अति चिकनी- चुपड़ी एवं पाखंडपूर्ण विधा है।

फिर भी क्यों न हम इस देश की ८० करोड़ जनता के प्रति आस्था रखें और प्रतिज्ञा करें :

नय्या भँवर में पायेंगे,
हम अपना जोर लगायेंगे।
डूबेंगे मर जायेंगे,
पर कश्मीर बचायेंगे॥

कश्मीर के मन्दिर
अपवित्रीकरण और भ्रामक सूचनाएँ

——द्वारकानाथ मुंशी

८ मई तथा ११ जून १९९१ को अति अल्प अंतराल से श्री वी.जी. वर्गीज के लेख इंडियन एक्स्प्रैस में प्रकाशित हुए। उनमें उन्होंने अपने इस मत की पुनः पुष्टि की कि कश्मीर के मंदिरों को कोई क्षति नहीं पहुँची है जबकि उसके विपक्ष में प्रबल तथा अकाट्य साक्ष्य विद्यमान हैं।

श्री वर्गीज एक प्रतिष्ठित व्यक्ति, वरिष्ठ पत्रकार तथा राष्ट्रीय मंच के पोषक हैं। अतः हम तो यही चाहेंगे कि उनकी छानबीन तथा प्रज्ञा ने उन्हें एक सही आकलन प्रदान किया होगा कि वहाँ सभी मंदिर सुरक्षित हैं। लेकिन खेद है कि उनके निष्कर्ष सारहीन तथा विवादास्पद आधारों पर टिके हैं। उन्होंने कश्मीर के बारे में लगभग तथाकथित मानव अधिकारों के समर्थकों, पीयूसीएल आदि जैसा ही शोचनीय रवैया अपनाया है। तथ्य तो कुछ और ही हैं। अतः उनके आग्रह भ्रामक हैं और उन पर शान्त, निष्पक्ष भाव से तथा यथार्थवादी दृष्टि से विचार करने की आवश्यकता हैं।

श्री वर्गीज ने अपनी छानबीन तथा निर्वचन के समर्थन में एक स्थिति पर बल दिया है। वह है १९९० की घटनाओं से संबंधित मंदिरों की उनकी सूची जिसे ढाल बनाने का उन्होंने प्रयास किया है। फिलहाल हम उसी पर विचार करेंगे।

यह एक तथ्य है कि १९९० के सत्यानाश से पूर्व भी एक सौ से अधिक मंदिरों तथा पूजा और अर्चना के अन्य स्थलों को अपवित्र किया गया, तोड़-फोड़ की गयी और उनकी कलाकृतियों को नष्ट कर दिया गया और उसका खंडन केवल घोर अज्ञानी तथा पक्षपातपूर्ण व्यक्ति ही कर सकता है। इन एक सौ से अधिक स्थलों में कश्मीर घाटी में हिन्दुओं के अन्य असंख्य पूजा-स्थल शामिल नहीं हैं जिन पर बलात् कब्जा कर लिया गया अथवा जिनका नामोनिशान मिटा दिया गया।

इन परवर्ती श्रेणी के स्थलों में पूजा तथा अर्चना के खुले पवित्र स्थलों के अलावा श्मशान भूमियाँ भी शामिल हैं।

बलात् अवैध कब्जे का सिलसिला १९४७ में स्वाधीनता- दिवस से ही प्रारंभ हो गया था। प्रशासन ने न केवल अनदेखी की अपितु सरकारी भूमि, सांझे चरागाहों, हिन्दू पूजा स्थलों के आसपास की अरक्षित भूमि पर कब्जे को नगरों में भी तथा ग्रामों में भी वस्तुतः प्रोत्साहन दिया। तब इन समस्त स्थलों पर उस मुस्लिम औकाफ़ का अधिकार हो गया जिसके सर्वशक्तिमान अध्यक्ष थे स्वयं शेख़ अब्दुल्ला।

यह एक सतत् प्रक्रिया रही है। इसे समझने के लिए हमें अपने सर्वदेव-मंदिरों पर सरसरी दृष्टि डालनी होगी। कौन नहीं जानता कि अन्य सब स्थानों की भाँति ही कश्मीर के हिन्दू भी जल तथा स्थल पर शक्ति के सभी ज्ञात स्रोतों तथा प्रकृति के सभी रूपों की पूजा तथा अर्चना करते हैं। हिन्दुओं ने न केवल मंदिरों का निर्माण किया है अपितु अपनी श्रद्धा तथा भावना में प्रकृति के इन रूपों को भी स्थान दिया है और प्रायः उन्हें सिंदूर, झंडों तथा झंडियों से चिह्नित किया गया है ताकि उन्हें अलग से पूजा तथा अर्चना का प्रतीक तथा मूर्त रूप बनाया जा सके।

कश्मीर घाटी में यह सर्वेश्वरवाद सुस्पष्ट है। वहाँ ऐसे तीर्थस्थलों को आसपास की पहाड़ियों तथा पर्वतों, नदी- तटों तथा धाराओं, यहाँ तक कि दुर्गम गुफाओं में भी चिह्नित किया गया है। पूजा तथा अर्चना के इन स्थलों के प्रति श्रद्धा की तीव्रता पर इस बात का कोई प्रभाव नहीं पड़ता कि वे आच्छादन तथा चारदिवारी वाले हैं अथवा खुले तथा असुरक्षित हैं।

प्रथम बड़ा आक्रमण

१९८६ के प्रारंभ में मुस्लिम कट्टरपंथियों ने घाटी के हिन्दुओं अर्थात् कश्मीरी पंडितों पर प्रथम बड़ा तथा पर्याप्त व्यापक आक्रमण किया। अनंतनाग के समृद्ध नगर तथा जिले के अन्य स्थानों के अलावा लुक भवन, फातेफोरा, वान्पुह, धनाव, बाबेहरा, अकुरा जैसे अनेक कस्बों तथा ग्रामों को आक्रमण का प्रमुख लक्ष्य बनाया गया। कई दिन तक उन्हे रौंदा तथा लूटा गया। घाटी के दूसरे छोर पर उत्तर के सुप्रसिद्ध समृद्ध

नगरों बारामूला तथा सोपोर पर भी आक्रमण किया गया लेकिन वे दक्षिण में लूटपाट की तुलना में कहीं सस्ते छूट गये।

कुल मिलाकर ३२ स्थान प्रभावित हुए। इनमें २४ मंदिर जला दिये गये, २२ को अपवित्र किया गया तथा लूटा गया, २२ मूर्तियाँ तोड़ दी गयीं। चूँकि यहाँ हमारी चर्चा केवल मंदिरों तथा हिन्दुओं के अन्य पूजा-स्थलों तक सीमित है, अतः हम घरों, दुकानों, फैक्टरियों आदि के विध्वंस तथा उन्हें पहुँची क्षति की चर्चा नहीं करेंगे।

दंगों का कुप्रभाव इतना विषाक्त था कि भाजपा द्वारा गठित एक अध्ययन-दल ने जिसमें श्री लाल कृष्ण आडवाणी, श्री केदार नाथ साहनी, चोटी के अन्य नेता तथा संसद्-सदस्य शामिल थे, प्रभावित स्थलों का दौरा किया। उन्होंने तत्कालीन आंतरिक सुरक्षा मंत्री अरुण नेहरू को अपने निष्कर्षों से अवगत कराया और घाटी की तत्कालीन स्थिति तथा वहाँ के पंडितों के जीवन, सम्पत्ति तथा सम्मान पर मंडरा रहे खतरे के बारे में उनके सम्मुख पूर्ण तथा प्रामाणिक तथ्य प्रस्तुत किये।

कश्मीरी समिति, दिल्ली ने भी एक अध्ययन-दल भेजा था। उसने अनेक प्रभावित क्षेत्रों का दौरा किया था और उसी स्वरूप तथा प्रकार की एक विस्तृत रिपोर्ट प्रकाशित की थी।

ऊपर अति संक्षेप में बताये गये निष्कर्ष राज्य तथा देश की अखंडता के लिए इतने खतरनाक पाये गये कि सरकार के पास इसके सिवाय और कोई विकल्प नहीं रह गया था कि वह कुख्यात जी.एम. शाह मंत्रिमंडल को भंग करके वहाँ राज्यपाल-शासन लागू कर दे। बाद में राजनीतिक शतरंज की जो बाजियाँ तथा घिनौनी धांधलियाँ चलीं, उनकी हम चर्चा नहीं करेंगे। लेकिन इस बीच मुस्लिम कट्टरपंथियों ने जमात-ए-इस्लामी को सबसे आगे रखकर इसका सर्वाधिक लाभ उठाया। प्रतिस्पर्धा करने वाले फारुक अब्दुल्ला तथा उनके बहिनोई के राजनीतिक गुटों ने अपने-अपने गुट को हथियार तथा पैसे दिये। यह एक ऐसा जाना पहचाना तथ्य है जिसे पुनरावृत्ति ही माना जायेगा। हमारे कट्टर शत्रु पाकिस्तान ने जी भर कर युद्ध पिपासा को भड़काया। इसके लिए उसने निरंतर हथियार तथा पैट्रो-डालर भेजे। उसने भाड़े के आतंकवादी भेजे और उन्हें प्रशिक्षण दिया। सीमाएँ लगभग खुली हैं और उन पर सतर्क निगरानी नहीं है। अतः इन सबको सरलता से राज्य की सीमा में भेजा जा सका।

१९९० का घोर विध्वंस

इस सबके फलस्वरूप ही जनवरी १९९० का घोर विध्वंस हुआ और वह आज भी चल रहा है । कट्टरपंथी अलगाववादियों ने सबसे पहले कश्मीरी पंडितों पर अपनी बंदूकें तानीं और उन पर अपना गुस्सा उतारा । अरक्षित, अशक्त तथा मित्रविहीन समुदाय के पास अपनी जान बचाने के लिए भागने के अलावा और कोई चारा न था ।

१९८९ में कट्टरपंथियों का जो प्रयोग भर था, उसने अब पूर्ण वेग धारण कर लिया । उन्हें कोई रोकने- टोकने वाला नहीं था । राज्य सरकार गिर चुकी थी और उजड़ चुकी थी । केन्द्रीय सरकार की न तो सद्भावना और न ही इच्छा थी कि वह इस विद्रोह को विफल करे । वह नहीं चाहती थी कि मुस्लिमों को अप्रसन्न किया जाये और शेष भारत पर उसके कुप्रभाव का खतरा उस समय मोल लिया जाये जब भारतीय क्षितिज पर चुनावों के मेघ घुमड़ रहे थे ।

प्रसंगवश बता दूँ कि कश्मीर के मुस्लिम अलगाववादी खुले आम कहते हैं कि वे तो इसी के बारे में शोरगुल मचाते हैं कि कश्मीर के अलग हो जाने की दशा में भारत के मुसलमानों पर क्या बीत सकती है ।

यह वह समय भी था जब :

१- वी. पी. सिंह सरकार ने जामा मस्जिद के इमाम को एक बहुमूल्य पिटारा देने का वचन दिया था जिसकी एक ज्ञात मद थी मस्जिद के जीर्णोद्धार के लिए ५० करोड़ रुपये की धनराशि । दलितों का मसीहा बनने का नाटक करने वाले श्री सिंह ने कश्मीर के दुर्दशाग्रस्त विस्थापितों के शिष्टमंडल से भेंट करने से बारंबार इंकार कर दिया ।

२- स्वर्गीय राजीव गांधी ने कश्मीर पर मंडरा रहे खतरे को स्वीकार नहीं किया और केवल तत्कालीन राज्यपाल की वापसी का राग अलापते रहे । उन्होंने हमारे कष्टों के बारे में खुलेआम चर्चा करने से इंकार कर दिया ।

३- नागरिक अधिकारों के तथाकथित समर्थकों ने अलगाववादियों के अधिकारों की वंचना पर तो आँसू बहाये, पर हमारी पीड़ा तथा क्षति के प्रति जानबूझ कर अविश्वास जताने अथवा मौन बने रहने का नाटक किया।

तथापि श्री वर्गीज ने अलगाववादियों की बर्बरता के बारे में इस आशय के समाचारों तथा विवरणों को तो पढ़ा ही होगा कि उन्होंने पहले तो महिलाओं से बलात्कार किया और फिर आरे से उनके टुकड़े- टुकड़े कर दिये अथवा उनके तन में जलती सिगरेट घुसेड़ कर उन्हें मार डाला और अर्द्ध मृत लोगों को गिद्धों द्वारा नोचे जाने के लिए छोड़ दिया अथवा मानवों तथा गायों को जिन्दा जला दिया। यदि ये बर्बर नरपिशाच सजीव प्राणी के साथ ऐसा अमानवीय व्यवहार कर सकते हैं तो सहज ही कल्पना की जा सकती है कि पूजा के निर्जीव प्रतीकों के प्रति उन्होंने बर्बरता का कैसा नंगा नाच किया होगा। उस समय विध्वंस की तोप एक प्रकार से केवल कश्मीरी पंडितों पर ही तानी गयी थी ताकि उन्हें पूर्णतया छिन्न-भिन्न कर दिया जाये और अलगाववाद की पूर्वापेक्षा के रूप में कश्मीर से बाहर खदेड़ दिया जाये। कौन यह बात सोच या कह सकते हैं या उस पर विश्वास कर सकते हैं कि पूजा- स्थलों को कोई क्षति नहीं पहुँचायी गयी ? केवल वे ही ऐसा कर सकते हैं जो निरे अनाड़ी हों या घोर पूर्वाग्रही हों या फिर वे जिन्हें इन घटनाओं से कुछ न कुछ लाभ पहुँचा हो।

बर्बर आतंकवादियों ने अपना पैशाचिक प्रकोप भवनों पर और उनसे अधिक पूजा के खुले स्थलों पर ढाया। उन्हें उन्होंने उजाड़ दिया और उनका नामोनिशान मिटा दिया। अंधकार और अनर्थ के ऐसे वातावरण में कौन ऐसे अपराधों का लेखा- जोखा एकत्र करके उनकी सूचना दे सकता था ?

झीनी आड़

फिर भी मामला बस इतना ही नहीं है कि १९९० में क्या हुआ , जैसा कि उद्धरण- चिह्न की आड़ लेने के लिए श्री वर्गीज ने इसे प्रस्तुत किया है। अब जबकि घाटी में सभ्य लोग प्रवेश नहीं कर सकते, १९९० में पहुँचायी गयी क्षति के बारे में ठीक- ठीक पता लगाना असंभव है। मूल प्रश्न यह है कि विगत कुछ दशकों में क्या कुछ हुआ है। मैं तीन पैने उदाहरण दूंगा, उनकी सच्चाई की परख अब भी किसी समय की जा सकती है।

एक तो श्रीनगर में छत्ताबल के भैरव का है। यह स्थानीय संरक्षक देवता की पूजा- अर्चना का स्थल था और उसका प्रतीक था एकदा अति रमणीय झेलम नदी के तटवर्ती सुरम्य वातावरण में स्थित एक भव्य वृक्ष। मुस्लिमों ने अचानक दावा किया कि वह तो कब्रिस्तान है। सरकार ने तुरंत कह दिया कि हिन्दू अपने पूजा- स्थल में प्रवेश नहीं कर सकते।

दूसरा उदाहरण हरि पर्वत की तलहटी का है। पूरी तलहटी के साथ- साथ अनेक छोटे- छोटे मंदिरों तथा मूर्तियों, चट्टानों, पेड़ों आदि से सुशोभित खुले स्थल थे। ये सब पहाड़ी की चोटी पर बने माता शारिका के मंदिर के चरणों में फैले विशाल क्षेत्र में स्थित थे जो देवी आंगन के नाम से विख्यात था। इनमें से प्रत्येक प्रतीक पंडितों के लिए पूजनीय एवं श्रद्धा का प्रतीक था और अति प्राचीन काल से यह मान्यता चली आ रही थी। इनका नामोनिशान मिटा दिया गया है और उनमें से अनेक अब आवासीय घरों तथा व्यावसायिक केन्द्रों के नीचे दबे पड़े हैं। क्या श्री वर्गीज उन्हें अब कभी किसी प्रकार देख पायेंगे ?

अपवित्रीकरण की व्याख्या की जाये

तीसरा अभी हाल का अति गंभीर उदाहरण है और वह है खीर भवानी का अपवित्रीकरण। श्री वर्गीज गये। उन्होंने देखा, भाला, वार्ताएँ कीं और लौट कर उन्होंने कह दिया कि कोई क्षति नहीं पहुँचायी गयी। यदि मंदिर की ओर राकेट छोड़ा गया तो क्या वह अपवित्रीकरण नहीं है ? अपवित्रीकरण क्या तभी होता जब समूचा मंदिर उड़ा दिया जाता ? अपवित्रीकरण के बारे में श्री वर्गीज की क्या व्याख्या है ? इसके अलावा यदि कोई क्षति नहीं पहुँची या अपवित्रीकरण नहीं हुआ जैसा कि श्री वर्गीज का दावा है तो स्थानीय मुस्लिमों ने किस संबंध में विरोध प्रकट किया ? और उन्होंने वहाँ (और गन पतयार में) पुजारी से वार्ता की। वे चारों ओर से घिरे उन दुर्दशाग्रस्त पुजारियों से क्या मुँह खोलने की आशा करते थे जो अपने धर्म- कर्म का निर्वाह करने के लिए अपने प्राणों को संकट में डाल रहे हैं और जिन्हें चारों ओर से यम के दूत घूर रहे हैं ? वे अथवा कोई भी अन्य कश्मीरी पंडित ऐसा एक शब्द भी कहने का साहस नहीं करेंगे जो सुदूर में भी आतंकवादियों को अप्रसन्न कर दे, भले ही कोई आतंकवादी वास्तव में आसपास न भी हो। ऐसा आतंक है वहाँ।

अन्त में, श्री वर्गीज खीर भवानी पर हुए आक्रमण को इस तर्क की संगति का कवच प्रदान करते हैं कि वहाँ सुरक्षाकर्मियों की टुकड़ियाँ हैं। क्या वे यह कहना चाहते हैं कि एक महत्वपूर्ण राष्ट्रीय कर्तव्य का पालन करने वाले इन सुरक्षाकर्मियों पर अलगाववादियों का आक्रमण पूर्णतया सांविधानिक, वैध और क्षम्य है ? अथवा क्या वे यह सुनना चाहते हैं कि यह तो युद्ध है ?

कश्मीर में हिन्दुओं का सामूहिक संहार

—विजय टिक्कू

एक समय था जब कश्मीर की घटा धरती पर ही स्वर्ग के नाम से प्रख्यात थी और अपने अति सुन्दर पर्वतों, झीलों, नदियों, झरनों तथा पुष्पों की रमणीयता के लिए विश्वविख्यात थी। पर आज वह अपने ही हिन्दू अल्पसंख्यकों के रक्त से लाल हो गयी है। कश्मीरी हिन्दुओं की संख्या १९४१ में कुल जनसंख्या का लगभग १० प्रतिशत थी पर १९८१ में वह घटकर ३ प्रतिशत रह गयी।

१९४७ के बाद ३ लाख से भी अधिक हिन्दुओं को अपना घरबार छोड़कर भारत में या उसके बाहर ऐसे सुरक्षित स्थानों पर जाने के लिए विवश होना पड़ा जहाँ वे सम्मान से जीविका उपार्जन कर सकें और शान्ति से सो सकें। यह निष्क्रमण शांति- पूर्ण ढंग से ऐसी योजनाबद्ध नीति के सहारे कराया गया जिसका आधार था आर्थिक घुटन, मूल मानवीय अधिकारों की अवहेलना और जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में मुस्लिम बहुसंख्यकों के हाथों अपमानजनक पाशविक व्यवहार। जम्मू- कश्मीर सरकार, स्थानीय नौकरशाही तथा विधि- व्यवस्था तंत्र में मुसलमान १९४७ से ही छाये हुए हैं।

लेकिन साथ ही साथ ये इस्लामी कट्टरपंथी- कश्मीर में 'धर्मनिरपेक्षता' का राग भी अलापते रहे। कश्मीर के हिन्दुओं के पास इसके अतिरिक्त और कोई चारा नहीं रह गया था कि वे अपनी मातृभूमि के प्रति उत्कट प्रेम के निमित्त तथा कश्मीर में राष्ट्रीय सम्मान की रक्षा के महान ध्येय को पूरा करने के लिए इन सब आपदाओं को चुपचाप सहन करें और इस ध्येय को पूरा करने के लिए उनका कश्मीर में बराबर डटे रहना अनिवार्य था। किन्तु पाकिस्तान, ईरान और सऊदी अरब द्वारा प्रचारित इस्लामी कट्टरतावाद से और कश्मीर के मुस्लिम राजनीतिकों, नौकरशाहों, बुद्धिजीवियों, व्यापारियों और नौजवानों के बीच सऊदी धन, ईरानी साहित्य तथा पाकिस्तानी भुजबल की सहायता से साँठगाँठ स्थापित हो जाने से अंतिम बल- परीक्षण के लिए आधार तैयार हो गया। इस नयी कूट योजना में कश्मीरी हिन्दुओं को कश्मीर में भारत की अग्रिम रक्षापंक्ति माना गया। अतः उन्हें उजाड़ कर उनका सफाया किया जाना था।

कश्मीरी हिन्दुओं पर प्रथम संगठित आक्रमण फरवरी १९८६ के तीसरे सप्ताह में किया गया। तब भारत में हिन्दुओं के परम पावन धाम अनंतनाग जिले में ५६ मंदिर तथा १५० घर एक ही दिन में जलाकर राख कर दिये गये। १५०० से भी अधिक हिन्दू घर लूटे गये। इस आक्रमण में जमात- ए- इस्लामी, मुस्लिम यूनाइटेड फ्रंट, नेशनल कांग्रेस तथा कांग्रेस के मुसलमानों ने भी भाग लिया (उस समय राज्य में कांग्रेस के अध्यक्ष कुख्यात सम्प्रदायवादी मुफ्ती मुहम्मद सईद थे) एक भी अपराधी गिरफ्तार नहीं कियां गया, अपराधियों को किसी प्रकार का दंड देना तो दूर की बात है।

अनंतनाग घटना का मंचन इसलिए किया गया कि कश्मीरी हिन्दुओं के दुर्बल पक्षों को तथा भारत संघ की शक्ति और उपस्थिति को, जिसका प्रतिनिधित्व उसके सुरक्षा- बल तथा अन्य अंग कर रहे हैं , निरखा तथा परखा जा सके। यह देख कर कि इस सीमावर्ती राज्य की तथा उससे से अधिक वहाँ के असहाय हिन्दू अल्पसंख्यकों की सुरक्षा में किसी की रुचि नहीं है, मुस्लिम कट्टरपंथियों को अपनी नयी योजनाओं के प्रसार का प्रोत्साहन मिला।

पाकिस्तान के तानाशाह जिया- उल- हक का 'आपरेशन टोपैज', जिसका उद्देश्य कश्मीर को हथिया कर भारत का अंग भंग करना था, १९८८ में प्रारंभ किया गया। इस कूट योजना के अधीन हिन्दुओं का विध्वंस किया जाना था ताकि कश्मीर के इस्लामीकरण का लक्ष्य प्राप्त किया जा सके और अंतिम रूप से उसका विलय पाकिस्तान में किया जा सके। फिर व्यक्तिगत पत्रों, पोस्टरों तथा स्थानीय उर्दूअखबारों में प्रकाशित विज्ञापनों या घोषणाओं के माध्यम से खुली धमकियाँ दी गयीं और कश्मीरी हिन्दुओं से कहा गया कि या तो वे घाटी छोड़ दें या फिर मरने के लिए तैयार हो जायें। यह देख कर कि इसके द्वारा अपेक्षित रूप से हिन्दू - निष्क्रमण नहीं हुआ, उन्होंने हिन्दुओं को भय से आवृत्त करने का निश्चय किया। इसके लिए उन्होंने लाउडस्पीकरों आदि पर निरंतर घोषणा की कि हिन्दू तुरंत घाटी से चले जायें वरना बहुत देर हो जायेगी। फिर चुन- चुन कर प्रभावशाली तथा प्रतिष्ठित हिन्दुओं की हत्याओं का सिलसिला प्रारम्भ हुआ। किन्तु भला अपने घरबार को और सर्वोपरि कश्मीर जैसी जन्मभूमि को कौन छोड़ना चाहेगा ? अतः प्रारम्भ में बहुत कम लोग

वहाँ से निकले। अधिकांश लोग इस आशा में टिके रहे कि स्थिति सामान्य हो जायेगी और राज्य तथा केन्द्र की सरकारें विधि एवं व्यवस्था स्थापित कर देंगी।

१९८९ का अंत होते न होते सशस्त्र मुस्लिम आतंकवादी कश्मीरी पंडितों समेत गैर- मुस्लिमों की तथा गैर- कश्मीरी हिन्दुओं की खुलेआम अंधाधुंध हत्या करने लगे, जिसके कारण समूची गैर- मुस्लिम जनता घाटी छोड़ने को विवश हो गयी। उन्होंने ऐसा इसलिए किया कि विशुद्ध इस्लामी राज्य की स्थापना हो सके और भागते हुए तथा भय से आक्रान्त हिन्दू जो खाली घर तथा चल- अचल सम्पति छोड़कर चले गये थे, उन पर कब्जा किया जा सके। हिन्दू तो अपनी मूल्यवान वस्तुएं , आभूषण तथा अन्य महत्वपूर्ण चल वस्तुएं भी अपने साथ नहीं ले जा सके। वे तो बस प्रथम उपलब्ध वाहन पर सवार होकर बनिहाल सुरंग को पार कर गये।

घाटी से खदेड़े गये तीन लाख लोगों में से लगभग डेढ़ लाख लोग जम्मू में या उसके आसपास जर्जर शिविरों में और किराये के मकानों में दुख के अपने दिन काट रहे हैं। ५०,००० लोग दिल्ली और उसके आस- पास बिखरे पड़े हैं। शेष लोग अलग- अलग स्थानों के यथा चंडीगढ़, अमृतसर, जालंधर, आगरा, गाजियाबाद, फरीदाबाद, शिमला, जयपुर, लखनऊ, वाराणसी , भोपाल, मद्रास, बंगलौर , बम्बई, कलकत्ता आदि के शिविरों में सिर छिपाकर बैठे हैं। अनेक लोगों ने मैदानी भागों में अपने मित्रों तथा रिश्तेदारों के यहाँ अस्थायी रूप से आश्रय लिया है।

८०० से भी अधिक कश्मीरी हिन्दुओं की, लगभग १०० गैर- कश्मीरी हिन्दुओं की तथा एक दर्जन सिखों की अति बर्बर तथा क्रूर ढंग से हत्या कर दी गयी है। लगभग १५० कश्मीरी मुसलमानों की भी हत्या कर दी गयी है क्योंकि उन्होंने हिन्दुओं के साथ अच्छे पड़ोसियों का सा व्यवहार किया था। इन लोगों के या तो गले घोंट दिये गये या चीर दिये गये या फिर उनके अंग- अंग काट डाले गये। अनेक लोगों के तन में आतंकवादियों ने लोहे की सलाखें घुसेड़ दीं और वस्तुतः जीवित ही उनकी खाल खींच ली। विकृत शवों को सड़ने के लिए फेंक दिया गया। मृतकों का दाह या अंतिम संस्कार करने वाला कोई नहीं था। अधिकांशतः यह काम सुरक्षा- बलों को करना पड़ा। मृतकों के आश्रित जन अमानवीय परिस्थितियों में जम्मू तथा अन्य स्थानों में रह रहे हैं और अपने साथ वे जो कुछ ला सके थे, उसे बेचकर अपने दिन पूरे कर

रहे हैं । जम्मू तथा अन्य स्थानों में सैकड़ों विस्थापित हिन्दू मानसिक संताप तथा आघात के कारण काल के गाल में चले गये हैं ।

कुछ हजार कश्मीरी हिन्दू अब भी घाटी में रह रहे हैं क्योंकि उनके पास अन्य स्थानों पर जाने के लिए साधन नहीं हैं । दूरदराज के कोनों में बसे कुछ इक्के- दुक्के परिवार अपने स्थान नहीं छोड़ सक्ते क्योंकि उन्हें आसपास के मुस्लिमों ने गंभीर दुष्परिणामों की धमकी दे रखी है और वे इन असहाय हिन्दुओं का उपयोग बन्धक अथवा अपनी धर्मनिरपेक्षता के दिखावे के रूप में कर रहे हैं ।

कश्मीर में हिन्दुओं के खाली घर लूट लिये गये हैं । अब तक लगभग १५०० घर जलाये जा चुके हैं । जहाँ भारतीय बीमा कम्पनियों ने (जाली) दावों के बदले में चहेते कश्मीरी मुस्लिमों को करोड़ों रुपये की सुरक्षा- राशि का भुगतान कर दिया है, वहाँ हिन्दुओं अर्थात् वास्तविक पीड़ितों के दावे अभी तक निर्णीत नहीं किये गये हैं । हिन्दू स्वामित्व वाले अथवा हिन्दुओं द्वारा संचालित विद्यालयों और अन्य शैक्षिक तथा धार्मिक संस्थाओं के भवनों को बमों से उड़ाया या आग लगा कर जलाया जा रहा है । संक्षेप में, कश्मीर की ५००० वर्ष पुरानी हिन्दू सभ्यता के सभी अवशेषों को सशस्त्र मुस्लिम आतंकवादियों ने पाशविक बल के बूते पर मिटा दिया है । इस विनाशलीला को रोका जा सकता था यदि भारत सरकार अपने सुरक्षाकर्मियों का सदुपयोग विधि एवं व्यवस्था की स्थापना तथा निर्दोष उत्पीड़ितों के जीवन, सम्मान तथा सम्पत्ति की सुरक्षा के लिए करती । इस दृष्टि में भारतीय धर्मनिरपेक्षता की क्या मान्यता है ? क्या धमनिरपेक्षता का अर्थ हिन्दुओं का विध्वंस है ?

समूची त्रासदी की सबसे बड़ी विडम्बना यह है कि कश्मीरी हिन्दुओं के अब तक के इस सर्वाधिक सामूहिक संहार की ओर न तो किसी ने ध्यान दिया और न ही उसका कोई अभिलेख रखा, राष्ट्रीय और अन्तराष्ट्रीय संचार- माध्यमों में उसकी भर्त्सना तो दूर की बात है । अब भी समय है कि भारत के शांतिप्रिय नागरिक तथा अन्य देश स्वयं देखें कि कैसी बर्बरता से इस्लामी धर्मान्धों ने हिन्दुओं का हनन किया है । कश्मीर के मुस्लिम कट्टरपंथी तथा उनके पैशाचिक पाकिस्तानी सलाहकार हिन्दू अल्पसंख्यकों के सर्वाधिक जघन्य प्रकार के सामूहिक संहार के अपराधी हैं ।

सामूहिक संहार के कुछ नमूने

परिशिष्ट में प्रस्तुत है कुछ अति जघन्य हत्याओं के तथ्यों को उजागर करने वाला विवरण । यह प्रस्तुति तो विराट् समस्या का आभास मात्र है । ऐसी सैकड़ों दर्दनाक हत्याएं हुई हैं । उनमें से कुछ के बारे में विगत दो वर्षों से समाचार- पत्रों में सूचना दी गयी है । कुछ का उल्लेख तो बस अज्ञात शव के रूप में किया गया है और कुछ मामलों में तो मृतकों के रिश्तेदार अब भी अपने लापता रिश्तेदारों की वापसी की प्रतीक्षा कर रहे हैं । इस बात पर अभी भी रहस्य का पर्दा पड़ा हुआ है कि प्रथम सूचना रिपोर्टों में इन सभी हत्याओं को अंकित किया गया है या नहीं और स्थानीय पुलिस ने नियमानुसार इन मृतकों के फोटोचित्र लिये हैं या नहीं ? ऐसे अनेक अनुत्तरित प्रश्न हैं जिनका उत्तर केवल राज्य- प्रशासन और भारत सरकार दे सकती है ।

अनर्थ की जड़ —अनुच्छेद ३७०

—जगमोहन

(भूतपूर्व राज्यपाल, जम्मू- कश्मीर)

उनके लिए राजसत्ता ही सब कुछ है, सच्चाई कुछ भी नहीं। उन्होंने एक ऐसे लोक का निर्माण किया है जहाँ अन्याय ही अन्याय है और जहाँ हैं केवल विद्रूपताएँ तथा विरोधाभास।

लेखक की डायरी (१५ अगस्त, १९८६)

कश्मीरी पृथक्तावाद तथा परायेपन की एक सर्वाधिक सशक्त जड़ भारतीय संविधान के अनुच्छेद ३७० में धँसी है। यह अनुच्छेद जम्मू- कश्मीर राज्य को विशेष श्रेणी प्रदान करता है। यह एक ऐसा प्रश्न है जिसके साथ न केवल दूरगामी दुष्परिणामों वाले ऐतिहासिक, राजनीतिक, सामाजिक एवं आर्थिक पहलू बल्कि मनोवैज्ञानिक तथा भावनात्मक पक्ष भी जुड़े हैं। इसके बारे में समूचे राष्ट्र में प्रायः भीषण विवाद उठाया जाता रहा है। इसे हटाये या न हटाये जाने के बारे में भी जोरदार तर्क दिये जाते रहे हैं। किन्तु एक आधारभूत पहलू की सदा ही अनदेखी की जाती रही है और·वह यह है कि निहित स्वार्थ उसका दुरुपयोग कर रहे हैं।

राज्यपाल के शासन के दौरान आधारभूत सुधारों की आवश्यकता पर गहन चिन्तन एवं मनन करते सपय मैंने अगस्त १९८६ में अपनी डायरी में लिखा थाः अनुच्छेद ३७० तो जन्नत के बीचोंबीच परजीवी पोषाहार- केन्द्र ही है। यह गरीबों को लूटता है। यह अपनी मृगमरीचिका से उन्हें छलता है। यह सत्ता- सम्पन्न अभिजातों की जेबें भरता है। यह नये 'सुल्तानों' के अहं को हवा देता है। वस्तुतः यह एक ऐसे लोक का निर्माण करता है जहाँ अन्याय ही अन्याय है और जहाँ हैं केवल विद्रूपताएँ तथा विरोधाभास। यह धोखाधड़ी, दोहरेपन तथा जनभावनाओं को भड़काने की राजनीति को बढ़ावा देता है। यह विध्वंस के विषाणुओं का केन्द्र है। यह द्विराष्ट्र सिद्धान्त की अनर्थकारी परम्परा को जीवित रखता है। यह भारतीयता के विचार मात्र का गला घोंटता है और कश्मीर से कन्याकुमारी तक प्रकाश देने वाले महान सामाजिक

तथा सांस्कृतिक दीपस्तम्भ की छवि को ही धूमिल करता है। यह घाटी में एक प्रचंड भूकंप का केन्द्र हो सकता है—एक ऐसे भूकंप का जिसके कम्पनों को समूचा देश अनुभव करेगा और जिसके अप्रत्याशित दुष्परिणाम होंगे। उसके बाद मैंने अपने विचारों से केन्द्रीय सरकार को अवगत करा दिया और राज्य में एक नया संस्थागत ढाँचा तैयार करने के बारे में अनेक सुझाव भी दिये। किन्तु उनकी उपेक्षा कर दी गयी। एक सुनहरा अवसर गँवा दिया गया।

वर्षों से अनुच्छेद ३७० सत्तारूढ़ अभिजात वर्ग के तथा नौकरशाही, व्यापार, न्यायपालिका और वकालत पेशे के निहित स्वार्थ वाले तत्वों के हाथों में शोषण का हथियार बन गया है। इसने एक दुश्चक्र को प्रारंभ किया है। यह अलगाववादी शक्तियों को जन्म देता है और बदले में वे अनुच्छेद ३७० का पोषण करके उसे बल प्रदान करती हैं। राजनीतिक नेताओं के अलावा समृद्ध वर्गों के लिए भी यह धन बटोरने का एक सुविधाजनक साधन हो गया है। इसके सहारे वे किसी स्वस्थ वित्तीय विधान को प्रवेश नहीं करने देते। अनुच्छेद ३७० की आड़ लेकर भारत संघ के सम्पदा कर, नगर- भूमि अधिकतम सीमा, उपहार कर आदि से संबंधित तथा अन्य हितकारी विधानों को राज्य में लागू नहीं होने दिया गया है। जनसाधारण को यह समझने नहीं दिया जाता कि वास्तव में तो अनुच्छेद ३७० उसे निर्धन बना रहा है और उसे न्याय से तथा आर्थिक विकास में आबंटित उसके समुचित अंश से वंचित कर रहा है।

प्रश्न उठते हैं : आखिर किन परिस्थितियों में अनुच्छेद ३७० को हमारे संविधान में स्थान दिया गया ? उसकी विषय- वस्तु क्या है ? और कितना इतने वर्षों में इस अनुच्छेद का अवक्षीणन, यदि कोई है, हुआ है ? आगे बढ़ने से पहले इन प्रश्नों से जूझना है। आज़ाद कश्मीर फोर्स की आड़ में २४ अक्टूबर, १९४७ को जब पाकिस्तान ने राज्य पर आक्रमण किया तो महाराजा हरिसिंह ने भारत सरकार से सहायता माँगी। २६ अक्तूबर १९४७ को उन्होंने राज्य का विलय भारत में करने के विलय- पत्र पर हस्ताक्षर किये और इसके साथ उन्होंने तीन क्षेत्रों अर्थात् रक्षा, वैदेशिक मामलों तथा संचार के सभी अधिकार संघीय सरकार को सोंप दिये। विलय के इस समझौते की रूपरेखा देसी रियासतों के अन्य प्रमुखों द्वारा किये गये समझौते

जैसी ही थी। लेकिन भारत सरकार के आग्रह पर यह निश्चय हुआ कि विलय के संबंध में अंतिम निर्णय जम्मू- कश्मीर की संविधान- सभा लेगी। बीच की अवधि के लिए अर्थात् विलय का समझौता होने और राज्य की संविधान- सभा द्वारा उस पर विचार किये जाने तक के लिए भारत के संविधान में अस्थायी उपबंध किये जाने थे। और यह व्यवस्था अनुच्छेद ३७० को जोड़ कर की गयी।

अनुच्छेद ३७० का सारांश यह है कि जम्मू- कश्मीर के बारे में रक्षा, वैदेशिक मामलों तथा संचार के अलावा संघीय संसद् संघीय एवं समवर्ती सूचियों के विषयों में संबंधित कानून बना सकती है लेकिन उसके लिए राज्य सरकार की सहमति आवश्यक है। इससे जम्मू तथा कश्मीर राज्य को विशेष स्तर मिल गया है। जहाँ संविधान की संघीय तथा समवर्ती सूचियों में सम्मिलित विषयों के संबंध में सभी राज्यों के लिए कानून बनाने की असीमित शक्तियाँ संघीय संसद् को प्राप्त हैं, वहाँ जम्मू- कश्मीर के संबंध में वह ऐसा केवल राज्य सरकार की सहमति से ही कर सकती है।

अनुच्छेद ३७० की विषय- वस्तु को देखने से पता चल जायेगा कि यह एकदम अस्थायी व्यवस्था थी। जम्मू- कश्मीर की संविधान- सभा ने फरवरी १९५६ में भारत में राज्य के विलय की अभिपुष्टि कर दी थी। इस अभिपुष्टि के साथ विलय का प्रश्न तो अंतिम रूप से निपट गया लेकिन रक्षा, वैदेशिक मामलों तथा संचार को छोड़कर अन्य विषयों पर संसद् के क्षेत्राधिकार के बारे में रवैया लचीला बना रहा। राज्य सरकार की सहमति से राष्ट्रपति जम्मू- कश्मीर राज्य पर भारतीय संविधान के उपबंधों का विस्तार कर सकते हैं।

अनुच्छेद ३७० के अधीन भारत के राष्ट्रपति का प्रथम आदेश १९५० में निर्गत किया गया था। आदेश के द्वारा जम्मू- कश्मीर राज्य पर भारतीय संविधान के उन उपबंधों को लागू किया गया जिनका संबंध विलय के समझौते में उल्लिखित तीन विषयों से था। भारतीय संविधान के कुछ और उपबंधों को जम्मू- कश्मीर पर लागू करने के प्रस्तावों के बारे में संघीय सरकार तथा राज्य सरकार के प्रतिनिधियों के बीच और आगे चर्चा हुई। उस समय शेख़ अब्दुल्ला जम्मू- कश्मीर के प्रधान मंत्री थे। चर्चा के फलस्वरूप दोनों सरकारों के बीच एक सहमति हुई। इस सहमति को दिल्ली

समझौता (१९५२) के नाम से जाना जाता है। इसके अनुसार भारत के राष्ट्रपति ने संविधान (जम्मू- कश्मीर पर लागू होना) आदेश, १९५४ निर्गत किया। इस आदेश के अधीन भारतीय संविधान के अनेक उपबंध इस राज्य पर लागू किये गये। समय- समय पर इस आदेश में संशोधन करके राज्य पर भारतीय संविधान के और उपबंध लागू किये गये। १९६६ में जम्मू कश्मीर के संविधान में भी संशोधन किया गया। उसके अनुसार सदरे रियासत के पदनाम को बदल कर राज्यपाल तथा प्रधान मंत्री को मुख्य मंत्री कर दिया गया।

संक्षेप में आजकल स्थिति यह है कि इनके अलावा भारतीय संविधान के अन्य विषयों के उपबंधों का विस्तार भी जम्मू- कश्मीर राज्य पर किया गया है। इनमें से प्रमुख हैं अनुच्छेद ३५६ तथा उच्चतम न्यायालय, निर्वाचन आयोग और नियंत्रक तथा महालेखापरीक्षक के क्षेत्राधिकार का विस्तार।

किन्तु अब भी ऐसा विशाल क्षेत्र है जो पूर्णतया राज्य सरकार के अधिकार- क्षेत्र में है। इसमें समवर्ती सूची का काफी बड़ा भाग तथा अवशिष्ट शक्तियाँ सम्मिलित हैं। अनुच्छेद ३५२ राज्य पर अति सीमित रूप में लागू है। उसके अनुसार राष्ट्रपति राष्ट्रीय आपात स्थिति की घोषणा कर सकते हैं। अनुच्छेद ३६० भी उस पर लागू नहीं है। उसके अनुसार राष्ट्रपति वित्तीय आपात स्थिति की घोषणा कर सकते हैं। राष्ट्रपति न तो राज्य के संविधान को निलंबित कर सकते हैं और न ही अनुच्छेद ३६५ के अधीन कोई निर्देश दे सकते हैं।

राज्य का अपना अलग संविधान है और दुर्भाग्य से वह अनुच्छेद ३७० की ही देन है। भारतीय संघ के किसी भी दूसरे राज्य का अपना अलग संविधान नहीं है। अन्य सभी राज्यों की एक सी संरचना है। वह भारतीय संविधान के भाग ४ में वर्णित है।

जम्मू- कश्मीर संविधान के उपबंध अनेक समस्याएँ खड़ी करते हैं। विशेषतः उनका संबंध सम्पत्ति रखने के अधिकार, नागरिकता के अधिकार तथा वहाँ बसने के अधिकार से है। भारत के नागरिक स्वतः जम्मू- कश्मीर के नागरिक नहीं बन जाते। राज्य में बसने का उन्हें कोई संविधानिक अधिकार प्राप्त नहीं है। भारत का संविधान केवल एक नागरिकता को मान्यता प्रदान करता है, लेकिन जम्मू तथा कश्मीर के

नागरिकों को दोहरे विशेषाधिकार प्राप्त हैं—वे भारत के नागरिक भी हैं और जम्मू- कश्मीर के भी। जो लोग जम्मू- कश्मीर राज्य के नागरिक नहीं हैं उन्हें अनेक अपात्रताओं को भुगतना पड़ता है। वे राज्य में सम्पत्ति नहीं रख सकते। उन्हें राज्य- विधानसभा, स्थानीय निकायों, पंचायतों अथवा सहकारिता- संघों आदि के लिए मतदान करने का अधिकार नहीं है। इससे भी अधिक अन्यायपूर्ण बात यह है कि यदि जम्मू- कश्मीर की कोई महिला ऐसे व्यक्ति से विवाह कर लेती है जो जम्मू- कश्मीर का नागरिक नहीं है तो वह अपनी सम्पत्ति से हाथ धो बैठती है। यही नहीं, वह अपने माता- पिता की सम्पत्ति की भी उत्तराधिकारी नहीं रहती। राज्य- संविधान के ये उपबंध वैधानिक तथा संविधानिक दृष्टि से बाबा आदम के युग के हो गये हैं। वे राज्य तथा संघ के बीच भावनात्मक अलगाव पैदा करते हैं और न्याय तथा निष्पक्षता के मूल सिद्धान्तों के सर्वथा विपरीत हैं। राज्य का अपना अलग झंडा तथा चिह्न है जो अस्वस्थ परिपाटी के कोढ़ में खाज का काम करता है। सरकारी भवनों पर राष्ट्रीय ध्वज तथा राज्य का ध्वज साथ- साथ फहराये जाते हैं। नेशनल कांफ्रेंस के मंत्री सामान्यतः राष्ट्रीय ध्वज तथा नेशनल कांन्फ्रेंस का ध्वज फहराते हैं।

जैसा कि इस अध्याय के प्रारंभ में कहा गया है, अनुच्छेद ३७० राज्य के जनसाधारण के हित में नहीं है। प्रस्तुत हैं कुछ उदाहरण :

एक छोटी सी चौकड़ी कैसे अनुच्छेद ३७० का दुरुपयोग करती है, उसका एक विशिष्ट उदाहरण मार्च १९८८ में नैदौस होटल के पट्टे का नवीकरण है जिस की अवधि जून १९८० में समाप्त हो गयी थी। मार्च १९८८ में राज्य सरकार ने इस पट्टे का नवीकरण ९५ वर्षों के लिए किया, पर इसे पिछली अवधि जून १९८० से प्रभावी माना गया। इसके अधीन पट्टेदार को किराये के रूप में प्रतिवर्ष ५२,००० रुपये देने पड़ेंगे और पट्टे की अवधि के अंतिम दस वर्षों में यह राशि दोगुनी हो जायेगी। इसके साथ ही पट्टेदार को यह अनुमति भी दे दी गयी है कि वह यह सम्पत्ति इंडियन टोबैको कम्पनी को शिकमी पट्टे पर दे दे। यह कम्पनी वैलकम ग्रुप के नाम से होटलों की श्रृंखला चलाती है। इस कम्पनी द्वारा पट्टेदार को किराये के रूप में प्रतिवर्ष १४ लाख रुपये दिये जाने हैं और इस राशि को बढ़ाते हुए पट्टे की अवधि के अन्तिम दशक में ३० लाख कर दिया जायेगा। या यों कहिए कि पट्टेदार को पट्टे की

अवधि में वेल्कम ग्रुप से किराये के रूप में १६ करोड़ रुपये से भी अधिक राशि प्राप्त होगी और वह उसी अवधि में सरकार को किराये के रूप में ८० लाख रुपये देगा। इस प्रकार उसे बिचौलिये के रूप में सरकार को चूना लगाते हुए १८.२० करोड़ रुपये का हराम का विशुद्ध लाभ होगा। यदि ११३ कनाल के भूखंड की यह सम्पत्ति नीलाम की जाती या प्रतियोगी टेंडरों के आधार पर अलाट की जाती तो राज्य सरकार को पट्टे की राशि के रूप में सात करोड़ रुपये मिलते।

अब सन्तूर होटल के नाम से विख्यात कराल सांगरी पर बने होटल का मामला अनुच्छेद ३७० के सुरक्षा- कवच की आड़ में किये गये घोटाले का रोचक उदाहरण है। इस मामले में पहाड़ी की चोटी पर एक पाँच सितारा होटल बनाया गया है जहाँ से डल झील का सुन्दर दृश्य दिखता है।

जब १६८५ के मध्य में सोवियत संघ में भारत के राजदूत टी.एन. कौल मुझसे मिलने आये, तब यह प्रकरण मेरे ध्यान में आया। वे छुट्टियों पर थे और चश्माशाही गैस्ट हाऊस में ठहरे हुए थे। उन्होंने मुझे बताया कि कराल सांगरी की पहाड़ी को सड़क बनाने के लिए तोड़ा जा रहा है। चश्माशाही से कराल सांगरी का दृश्य अति मनोहारी लगता है। मैंने मामले की छानबीन करायी। मुझे पता चला कि सैयद मीर कासिम के मुख्य मंत्रित्वकाल में निर्माण- स्थल पर कुछ सरकारी हट (मकान) बनाने के लिए छानबीन का काम प्रारम्भ किया गया था। लेकिन वास्तव में कुछ भी बनाया नहीं गया। जब शेख अब्दुल्ला सत्ता में आये तो एक स्थानीय प्रभावशाली व्यापारी ने इस निर्माण- स्थल का एक भाग चुपचाप खरीद लिया। यहाँ होटल बनाने की अनुमति मिल जायेगी, इसकी उसे मौन सहमति प्राप्त थी। डा. फारूक अब्दुल्ला के मंत्रिमंडल के समय में बहुत साधारण सी अस्पष्ट सी स्वीकृति भी श्रीनगर नगरपालिका से प्राप्त कर ली गयी थी। जब यह व्यापारी राज्य से बाहर के ऐसे साधन- सम्पन्न होटल स्वामी की फिराक में था जिसे वह भवन- निर्माण के स्वीकृत नक्शे सहित यह प्लाट वस्तुतः बेच सके, डा. फारूक अब्दुल्ला की सरकार गिर गयी। कुछ समय तक चुप रहने के बाद इस व्यापारी ने तत्कालीन मुख्य मंत्री जी.एम.शाह के पुत्र मुजफ्फरशाह की कथित सहायता से भवन- निर्माण के नक्शे को पुनः मान्य करा लिया। उस समय तक एक उपयुक्त पार्टी सेंटूर होटल भी मिल

गयी और दोनों पक्षों के बीच पक्का सौदा हो गया। तभी इस पहाड़ी की कटाई प्रारम्भ की गयी थी।

डा. फारूक अब्दुल्ला की पार्टी नेशनल कान्फ्रेंस (फा) ने, जो व्यापारी की कार्य-प्रणाली से परिचित थी, मुज़फ्फरशाह के कथित काले कारनामों के बारे में मुझसे कई बार शिकायत की। इसी सिलसिले में १४ सितम्बर १९८५ को डा. फारूक अब्दुल्ला मंत्रिमंडल के दो भूतपूर्व मंत्री पी.एल.हांडू तथा मुहम्मद शफी मुझसे मिले। इस मामले को लेकर वे इतने व्यग्र थे कि उन्होंने वस्तुतः मुझे कार्यालय से बाहर आने पर विवश कर दिया। उन्होंने मुझे दिखाया कि कैसे नैसर्गिक सौन्दर्य से सम्पन्न स्थल को भ्रष्ट किया जा रहा है और कैसे डल झील के सुंदर पर्यावरण को नष्ट किया जा रहा है।

७ मार्च, १९८६ को राज्य में राज्यपाल का शासन लागू कर दिया गया। फाइलों की जाँच करने के बाद मैंने पाया कि भूमि के स्वामित्व तथा तथाकथित स्वीकृति दोनों के ही बारे में अनेक अनियमितताएँ हैं। यह परियोजना रद्द कर दी गयी। मैं प्रसन्न था कि पर्यावरण का गंभीर विनाश टल गया था। मैंने सोचा था कि इससे केवल प्राकृतिक दृश्य ही कलुषित नहीं होता बल्कि होटल से भारी मात्रा में गाद और गंदगी बह कर झील में पहुँचती। लेकिन राज्यपाल के शासन की समाप्ति के थोड़े ही समय बाद मैंने देखा कि उस स्थल पर जोरशोर से निर्माण-कार्य चल रहा था। पूछताछ करने पर मुझे ज्ञात हुआ कि स्वयं मुख्य मंत्री डा.फारूक अब्दुल्ला ने होटल काम्प्लैक्स की आधारशिला रखी थी। कितने खेद की बात है कि जिस व्यक्ति और जिस दल ने भ्रष्टाचार और पर्यावरण-विनाश का आरोप लगाकर सबसे अधिक शोर मचाया था, उसी ने परियोजना को हरी झंडी दिखायी। इससे जहाँ स्थानीय व्यापारी तथा उसके सहयोगी होटल स्वामी को भारी लाभ पहुँचेगा, वहाँ राज्य को भारी हानि उठानी पड़ेगी।

यह प्रकरण बड़े ही प्रखर ढंग से यह उजागर करता है कि किस प्रकार धन और सत्ता के भूखे भेड़ियों के गुट तथा गिरोह अनुच्छेद ३७० के घने तथा कंटीले झाड़ की आड़ में राज्य की अर्थव्यवस्था तथा पर्यावरण प्रणाली को नष्ट तथा भ्रष्ट कर रहे हैं।

यदि वाणिज्य- स्थलों को बोली लगाकर या प्रतियोगी टेंडर मँगा कर आबंटित किया जाये और उसमें देश का हर व्यक्ति भाग ले सके तो इससे राज्य को असीम लाभ होगा। तब केवल थोड़े से बिचौलिये भू- संसाधनों को नहीं हड़प सकेंगे। राज्य के पर्यावरण को भी क्षति नहीं होगी। काला धन कम होगा। भ्रष्ट तथा चालाक लोगों के लिए धांधली के अवसर कम हो जायेंगे। सत्तारूढ़ तथा व्यापारिक अभिजातवर्ग के बीच साँठगाँठ समाप्त हो जायेगी। जब चोरी- छिपे कुछ करने की आवश्यकता नहीं पड़ेगी तो परिस्थितिकी एवं पर्यावरण को कम से कम हानि पहुँचेगी। राज्य में बाहर से पूँजी आयेगी। स्थानीय लोगों को रोज़गार के और अधिक अवसर मिलेंगे। समाज और खुला हो जायेगा और विकास की प्रक्रिया तेज हो जायेगी। राज्यपाल के शासन के दौरान १९८६ में मैंने ही हरि निवास नामक परिसर की बिक्री के लिए सार्वजनिक रूप से बोली लगवायी थी। इसमें राज्य- निवासी संबंधी शर्त नहीं थी। इस परिसर में होटल बनना था। यह परिसर भूतपूर्व महाराजा का था। १९७० के दशक के प्रारंभ में इसे डा.कर्ण सिंह ने राज्य सरकार को ५० लाख रुपये में बेच दिया था। एक प्रकार से इसका कोई उपयोग नहीं हो रहा था। खुली नीलामी में ६ करोड़ रुपये की बोली लगी। अनुच्छेद ३७० की दुहाई देकर शक्तिसम्पन्न अभिजात वर्ग निर्धन वर्ग को गुमराह न कर सके, इसके लिए मैंने वहीं तत्क्षण घोषणा कर दी कि नीलामी से प्राप्त हुए मुनाफे का सदुपयोग शहर में मल- जल निकास व्यवस्था के लिए किया जायेगा। इस प्रकार नीलामी से हुई आय को नगर के गरीबों के लिए हितकर नगर- विकास योजना से जोड़ दिया गया और अनुच्छेद ३७० के हानिकर दुष्प्रभाव को उजागर कर दिया गया जो राज्य के संसाधन- आधार को संकुचित करता है।

नगर- भूमि (अधिकतम सीमा तथा विनियम) अधिनियम, १९७६ समूचे भारत पर लागू होता है। लेकिन उसे जम्मू- कश्मीर पर लागू नहीं किया जाता। इसे लागू न करने का जम्मू- कश्मीर की विशेष श्रेणी से क्या संबंध है ? इस अधिनियम को मुख्यतः इसलिए लागू नहीं किया गया कि सत्तारूढ़ अभिजातवर्ग के निहित स्वार्थों की रक्षा की जा सके।

मार्च १९८८ में ही मुझे सरकारी भ्रष्टाचार के छः गंभीर मामलों की छानबीन करने का अवसर मिला। एक मामले में राजस्व मंत्री तथा उनके दामाद के विरुद्ध

आरोप थे। दूसरे मामले में पिछले राजस्व सचिव तथा पिछले राजस्व मंत्री शामिल थे। तीसरे मामले में भूतपूर्व राज- परिवार के एक सदस्य ने चोरी- छिपे भारी राशि प्राप्त की थी। चौथे मामले मे शरणार्थियों की सम्पत्ति के अभिलेखों में हेरफेर की बात सामने आयी। पाँचवे मामले में भूतपूर्व मुख्यमंत्री के बेटे पर शहर के बीचोंबीच महँगी भूमि हथियाने का आरोप था। छठे मामले में एक राजनीतिक दल के चोटी के नेता पर अपनी भूमि के मुआवजे के रूप में सामान्य दरों से कहीं अधिक धन वसूलने का आरोप था। इन सभी मामलों में दो पक्ष समान थे : नगर- भूमि और राजनीतिक तथा नौकरशाही अभिजातवर्ग की लिप्तता। महँगी भूमियाँ हथियाकर और उन पर सट्टेबाजी करके भारी बेनामी राशि बटोरी गयी। नगर- भूमि (अधिकतम सीमा तथा विनियमन) अधिनियम, १९७६ को लागू करके इस धांधली को रोका जा सकता था लेकिन निहित स्वार्थों ने ऐसा नहीं होने दिया।

अनुच्छेद ३७० का दुरुपयोग राजनीतिक गुट- तंत्र की स्थापना के लिए भी किया गया है। यथा, विधानमंडलों में दल बदल को रोकने के लिए जो केन्द्रीय कानून बनाया गया, उसे जम्मू- कश्मीर राज्य पर लागू नहीं किया गया या राज्य में उसे पूर्णतः अंगीकार नहीं किया गया। स्थानीय कानून इस प्रकार बनाया गया है कि वह पार्टी के अध्यक्ष को निरंकुश शक्तियाँ प्रदान करता है। राज्य का जो कानून इस समय लागू है, उसके अनुसार विधानसभा का अध्यक्ष यह निर्णय नहीं करता कि विधानमंडल के किसी सदस्य विशेष ने दलबदल किया है या नहीं। यह निर्णय पार्टी का अध्यक्ष करता है। दूसरे शब्दों में वह शासनाध्यक्ष भी होता है और पार्टी का अध्यक्ष भी। वही पार्टी के टिकट बाँटता है, वही मंत्रियों का नाम- निर्देशन करता है और यदि कोई मंत्री अथवा विधान मंडल में पार्टी का कोई सदस्य उसके नेतृत्व पर अंगुली उठाये तो वही निर्णायक होता है और उसका निर्णय अंतिम होता है। यह कानून जम्मू- कश्मीर संविधान (१८ वाँ संशोधन) अधिनियम, १९८७ के रूप में बनाया गया। उसमें उपबंध किया गया है : यदि कोई ऐसा प्रश्न खड़ा हो जाये कि विधानसभा का कोई सदस्य इस अनुसूची के अधीन अनर्हता का पात्र हो गया है या नहीं, तो जिस विधान- मंडल दल का वह सदस्य है, उसके नेता के पास उसके निर्णय के लिए वह प्रश्न भेजा जायेगा और उसका निर्णय अंतिम होगा। यह व्यक्तिपूजा की

स्थापना करता है और दल के नेता की सांविधानिक निरंकुशता पर स्वीकृति का ठप्पा लगाता है।

यदि जम्मू- कश्मीर की कोई महिला किसी ऐसे भारतीय से विवाह कर लेती है जो राज्य का नागरिक नहीं है तो उसे अपने अनेक अधिकार गँवाने पड़ते हैं। इसका उल्लेख मैं कर चुका हूँ। हाल के एक उदाहरण से मैं इसे स्पष्ट करना चाहूंगा। डा. रुबीना नसरुल्ला राज्य की स्थायी निवासी व नागरिक थीं। उन्होंने एम. बी., बी. एस. की डिग्री प्राप्त की और सरकारी मेडिकल कालेज में स्नाकोत्तर पाठ्यक्रम के लिए आवेदन किया। उनके पास राज्य की नागरिकता का प्रमाण- पत्र था और इसे उन्होंने अपने आवेदन के साथ प्रस्तुत कर दिया था। लेकिन उनसे कहा गया कि वे विवाहोपरांत स्थायी निवास प्रमाण- पत्र प्रस्तुत करें। उसका अर्थ था कि विवाह के बाद उनकी श्रेणी बदल गयी थी। उन्होंने अपेक्षित प्रमाण- पत्र के लिए सम्बद्ध अधिकारियों के पास आवेदन किया। उन्हें प्रमाण- पत्र नहीं दिया गया। क्यों ? क्योंकि उन्होंने एक ऐसे भारतीय से विवाह कर लिया था जो जम्मू- कश्मीर राज्य का निवासी नागरिक नहीं था। डा.रुबीना नसरुल्ला को अनुच्छेद २२६ के अधीन उच्च न्यायालय में याचिका दायर करनी पड़ी। उसमें प्रार्थना की गयी कि राज्य के अधिकारियों की दिनांक ६ फरवरी १९८५ की उस संसूचना को निरस्त किया जाये जिसके द्वारा उन्हें विवाहोपरान्त स्थायी निवासी का प्रमाण- पत्र प्रस्तुत करने का निर्देश दिया गया है और कहा गया है कि यदि अपेक्षित प्रमाण- पत्र प्रस्तुत न किया गया तो स्नाकोत्तर पाठ्यक्रम में प्रवेश की उनकी पात्रता को स्वीकार नहीं किया जायेगा। उनकी याचिका अब भी खटाई में पड़ी है।

यहाँ मूल प्रश्न यह है कि जम्मू- कश्मीर राज्य पर शासन करने वालों का तथा अनुच्छेद ३७० और उसके प्रतिफल राज्य- संविधान की ओट में ऐसे शासन की अनुमति देने वाले भारतीय नीति- निर्धारकों का दृष्टिकोण क्या है ? एक व्यक्ति जो भारतीय नागरिक है और साथ में जम्मू- कश्मीर का नागरिक एवं स्थायी निवासी है, वह भारत सरकार की वित्तीय सहायता से स्थापित मेडिकल कालेज में प्रवेश केवल इसलिए नहीं पा सकता क्योंकि उसने किसी भारतीय नागरिक से विवाह कर लिया। इससे बड़ा अन्याय एवं असभ्य व्यवहार और क्या हो सकता है ?

पश्चिमी पाकिस्तान के विस्थापितों का मामला तो घोर अन्याय का और भी निकृष्ट उदाहरण है। विभाजन के समय पश्चिमी पाकिस्तान से कुछ हजार परिवार भागकर जम्मू- कश्मीर में आ गये और वहीं बस गये। वे इस राज्य में चार दशक से अधिक समय से रह रहे हैं। लेकिन इन अभागे लोगों की, जिन्हें अपने वश से परे की परिस्थिति से विवश होकर वहाँ आना पड़ा था, प्राथमिक मानव अधिकारों से भी वंचित रखा गया है। उनको, उनकी संतानों तथा उनके पोते- पोतियों को जम्मू- कश्मीर में कोई नागरिक अधिकार नहीं मिले हैं। वे राज्य- विधानसभा या नगरपालिका या पंचायतों के चुनावों में भाग नहीं ले सकते। वे राज्य सरकार या उसकी एजेंसियों से कर्ज तक नहीं ले सकते। उनके युवा लड़के- लड़कियाँ राज्य के किसी मेडिकल, इंजीनियरिंग या कृषि कालेज में प्रवेश नहीं पा सकते।

क्या यह दुखद नहीं है कि यह सब कुछ हमारे देश के ही एक भाग में हो रहा है? यह वह देश है जो सदैव अपने सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक न्याय की सूझबूझ पर गर्व करता रहा है, जो दक्षिण अफ्रीका तथा फिलिस्तीन के लोगों के मानवाधिकारों पर आँसू बहाता रहा है। यहाँ मूल प्रश्न इस बात का नहीं है कि इससे कितने व्यक्ति प्रभावित होते हैं, बल्कि उस अराष्ट्रीय प्रवृत्ति का है जो क्षुद्र स्वार्थों को साधने के लिए तुष्टीकरण की राजनीति करती है और स्वार्थ की वेदी पर संवेदना और संकल्प की बलि चढ़ा देती है।

आज की दुनिया में अपराधियों के चार वर्ग हैं जो सामान्यतः परदे के पीछे ही रहते हैं। एक वर्ग है जो अगोचर ढंग से हेरफेर करके अपराध करता है। सर्वोच्च अभिजात वर्ग के लोग इस श्रेणी में आते हैं। वे अर्थव्यवस्था को केवल अपने लाभ के लिए अपने अनुकूल बनवाते हैं और जनता के एक विशाल वर्ग को भूखा रखकर उन्हें काल तथा रोग का ग्रास बनाते हैं। अपराधियों का एक दूसरा वर्ग है जो तथाकथित पर्यावरणीय टाइम बम का उपयोग करता है और शरीर में नहीं बल्कि जल, स्थल और वायु में विष घोलता है। अपराधियों का तीसरा वर्ग है जो गलत सूचना प्रसार की कला में निष्णात है और सच्चाई को उभरने नहीं देता। अपराधियों का एक चौथा वर्ग भी है जो ऐसी भूलचूक करके अपराध करते हैं जो वस्तुतः अपराध जैसी ही होती है। हम सब उसके बारे में जानबूझ कर मौन हैं। विचाराधीन विस्थापितों के मामले तथा अन्य ऐसे ही मामलों में समूचा देश अपराधी है क्योंकि वह अनुच्छेद ३७० तथा

उसके प्रतिफलों में छिपी असमानता तथा अमानवीयता की अनदेखी करने की भयंकर भूल- चूक कर रहा है।

अनुच्छेद ३७० के बारे में कुछ अन्य आधारभूत प्रश्न उठाये जाने चाहिए। इसका तर्काधार क्या है, इसका उद्देश्य क्या है ? कश्मीर के बारे में वह कौन सी विशेषता है जिसके कारण यह अनुच्छेद अन्य राज्यों पर लागू नहीं किया जा सकता ? यदि वहाँ अनुच्छेद ३७० कश्मीर के सांस्कृतिक अस्तित्व का रक्षण तथा परिरक्षण करता है तो ऐसा उपबंध तो सभी राज्यों के लिए होना चाहिए। सांस्कृतिक अस्तित्व के परिरक्षण की आवश्यकता तो समान रूप से सभी राज्यों को है। क्या यह कहा जा सकता है कि बंगाल अथवा केरल अथवा तमिलनाडु के सांस्कृतिक व्यक्तित्व को संरक्षण की आवश्यकता नहीं ? तो फिर कश्मीर में ही ऐसे कौन से सुर्खाब के पर लगे हैं जो भारत के अन्य राज्यों के पास नहीं हैं ? क्या उसकी विशेषता यह है कि वह एकमात्र मुस्लिम- बहुल राज्य है ? क्या इसका अर्थ यह नहीं निकलता कि अनुच्छेद ३७० को बनाये रखने के पीछे द्विराष्ट्र सिद्धान्त की मौन स्वीकृति है ?

हमने द्विराष्ट्र सिद्धान्त की निंदा की और सारे संसार के सामने घोषित किया कि भारत में धर्म के आधार पर कोई भेदभाव या अलगाव नहीं होता। लेकिन विडम्बना यह है कि हम स्वयं ही कश्मीर में द्विराष्ट्र सिद्धान्त को अति दुर्भाग्यपूर्ण तथा अति आत्मघाती ढंग से लागू कर रहे हैं। आखिरकार पाकिस्तान, जो द्विराष्ट्र सिद्धान्त की उपज है, अपने संसाधनों पर जीवित है। लेकिन यहाँ कश्मीर में अनुच्छेद ३७० तथा स्वायत्तता के प्रश्न को इस ढंग से रंग देने का जाल रचा गया है कि वस्तुतः एक शेख राज अथवा सल्तनत अथवा लघु पाकिस्तान ही खड़ा हो गया है और वह भी भारत के पैसे से। दुर्भाग्यवश इस जालसाजी को समझने के लिए हमारे पास न तो पैनी दृष्टि है और न ही आतुरता। भारत के प्रति इन कश्मीरी नेताओं का आतंरिक दृष्टिकोण यह रहता है कि 'जब आप यहाँ से जा रहे हैं तो क्या छोड़ जायेंगे, और जब आप आ रहे हैं तो अपने साथ क्या लायेंगे ?' यह रिश्ता केवल भारत से पैसा प्राप्त करने के लिए है न कि उससे वस्तुतः न्यायोचित, सम्प्रदायनिरपेक्ष तथा प्रगतिशील आधार पर स्थायी सम्बन्ध स्थापित करने के लिए। कोई भी संघीय कानून अथवा प्रशासनिक उपाय, चाहे वह जनसाधारण के लिए कितना भी लाभप्रद क्यों न हो, उसे ठुकरा दिया जाता है।

अनुच्छेद ३७० के समर्थक प्रायः यह तर्क प्रस्तुत करते हैं कि राज्य को पर्याप्त स्वायत्तता देने के लिए उसे बनाये रखना आवश्यक है। लेकिन वांछनीय स्वायत्तता का इस अनुच्छेद से क्या लेना- देना है ? जब संघ के अन्य राज्य और अधिक स्वायत्तता की मांग करते हैं तो उनका यह अभिप्राय नहीं होता कि उनकी अलग पहचान हो। वे तो वस्तुतः सत्ता का विकेन्द्रीकरण तथा हस्तातंरण चाहते हैं ताकि प्रशासन तथा विकास के कार्य तेजी से हो सकें जिससे जनता को अधिक अच्छी सेवाएँ तथा सुविधाएँ उपलब्ध करायी जा सकें। जम्मू- कश्मीर में जो यह मांग की जा रही है कि अनुच्छेद ३७० को उसकी प्राचीनतम पवित्रता के साथ बनाये रखा जाये अर्थात् उसमें से वह कथित अपमिश्रण हटा दिया जाये जो १९५३ से होता रहा है, उसके पीछे एक नितांत भिन्न उद्देश्य है। उसके पीछे यह चतुर रणनीति है कि मुख्य धारा से अलग रहो, एक नयी जागीरदारी स्थापित करो, एक अलग झंडा फहराओ, मुख्य मंत्री के स्थान पर प्रधानमंत्री रखो, राज्यपाल के स्थान पर सदरे रियासत रखो और अधिक सत्ता तथा संरक्षण प्राप्त करो। जनहित से, शांति तथा प्रगति के ध्येय की पूर्ति से अथवा विविधता के बीच सांस्कृतिक एकता की प्राप्ति से उसका कोई लेना- देना नहीं। उसका उद्देश्य तो नव अभिजात वर्ग, नये शेखों का हित- साधन का है।

अनुच्छेद ३७० में द्विराष्ट्र सिद्धान्त किस प्रकार निहित है और किस प्रकार यह सिद्धान्त परम्परागत रूप से राज्य के जनमानस में साम्प्रदायिकता के बीज बोता है, वह परिवार- कल्याण कार्यक्रम के प्रति वहाँ के नेताओं के दृष्टिकोण से स्पष्ट हो जायेगा। लगभग सभी राजनीतिक दल तथा गुट इस कार्यक्रम का विरोध करके अपना स्वार्थ सिद्ध करते हैं। यथा, अवामी नेशनल कान्फ्रेंस के अध्यक्ष तथा भूतपूर्व मुख्यमंत्री जी.एम.शाह ने हाल ही में कहा, 'सरकारी जन्म- नियंत्रण कार्यक्रम का उद्देश्य राज्य के मुस्लिम बहुसंख्यकों को अल्पसंख्यक बनाना है। १९४७ में राज्य में मुसलमानों की जनसंख्या ८० प्रतिशत थी, वह अब घट कर केवल ५४ प्रतिशत रह गयी है।' ऐसे बयान गलत आंकड़ों पर तो आधारित होते ही हैं, पर साथ ही वे परिवार कल्याण कार्यक्रम पर कुठाराघात करते हैं और रूढ़िवादियों तथा कट्टरपंथियों की आतंरिक चिन्तनधारा को भी उजागर करते हैं। वे परिवार- कल्याण कार्यक्रम को इस्लाम- विरोधी बताते हैं और कहते हैं कि यह तो मुस्लिमों को अति अल्पसंख्यक बनाने की हिन्दू भारत की साजिश है। इसी दृष्टिकोण का परिणाम है कि १९७१से १९८१ तक के दशक में जम्मू- कश्मीर में जनसंख्या वृद्धि दर देश में सर्वाधिक रही

है। जहाँ राष्ट्रीय औसत दर २५ थी, वहाँ राज्य की दर २६.६ रही। अनिवार्यतः उपलब्धि की दृष्टि से लक्ष्य बहुत पिछड़ गये हैं।

अनुच्छेद ३७० तथा स्वायत्तता- संलक्षणों का व्यवहार- पक्ष क्या है ? कश्मीर की स्थिति में क्या स्वायत्तता सचमुच संभव है ? क्या व्यवहार में उसका कोई अर्थ नहीं ?

चाहे योजना का खर्च हो या गैर- योजना का, दोनों के लिए जम्मू- कश्मीर मुख्यतः केन्द्र की सरकार पर आश्रित है। उसकी पंचवर्षीय योजनाओं के लिए पूरा पैसा केन्द्र देता है। उसके गैर योजना व्यय का अधिकांश भी केन्द्र वहन करता है। यथा, १६८८- ८६ के बजट में उसकी लगभग ७४ प्रतिशत राजस्व प्राप्तियाँ केन्द्रीय सरकार से मिलने वाले अनुदानों तथा ऋण के रूप में थीं। जहाँ राज्य को अनुदान व ऋण के रूप में केन्द्रीय सरकार से लगभग १००३ करोड़ रुपये प्राप्त हुए, वहाँ उसकी अपनी सकल प्राप्तियाँ केवल २३४ करोड़ रुपये की थीं। उसी वर्ष राज्य के कर्मचारियों का वेतन खर्च ही २७७ करोड़ रुपये था अर्थात् वह उसकी अपनी प्राप्तियों से भी अधिक था। ऐसी स्थिति में यदि राज्य को सचमुच स्वायत्त बना दिया जाये और उसे उसके संसाधनों के भरोसे छोड़ दिया जाये तो किसी योजना अथवा विकास- कार्य के लिए उसके पास एक पैसा भी नहीं होगा।

वह अपने बहुसंख्य कर्मचारियों को वेतन भी नहीं दे सकेगा। जम्मू- कश्मीर की जर्जर आर्थिक स्थिति तथा उसके सँकरे आर्थिक आधार को देखते हुए उसे स्वायत्तता प्रदान करना न तो संभव होगा और न ही वांछनीय।

यदि केन्द्र के साथ जम्मू- कश्मीर का पूर्ण वित्तीय गठबंधन न हो, तो वह और कुछ नहीं, महाराजा के शासनकाल जैसा एक मध्ययुगीन निरंकुश तंत्र बन जायेगा, जहाँ प्रति व्यक्ति आय केवल ११ रुपये थी और उसमें से भी २१ प्रतिशत तो कर के रूप में चला जाता था। वहाँ ६३.४ प्रतिशत लोग निरक्षर थे, हर ६६ वर्ग मील के क्षेत्र में लड़कों की और हर ४६७ वर्ग मील के क्षेत्र में लड़कियों की केवल एक- एक प्राथमिक पाठशाला थी और वहाँ कृषि, सार्वजनिक स्वास्थ्य, उद्योग, सड़क, सिंचाई और शिक्षा पर पूरे वर्ष में केवल ३६ लाख रुपये का व्यय किया जाता था। १६४७- ४८ में राज्य के बजट में कुल ४.८१ करोड़ रुपये के व्यय का प्रावधान

था जबकि १९८८-८९ में यही राशि १२३७ करोड़ रुपये थी। १९४७ में राज्य का प्रति व्यक्ति व्यय १५ रुपये था जबकि १९८८-८९ में केवल योजना पर यही प्रति व्यक्ति व्यय ६४५ रुपये हो गया। इस तुलना से पता चल जाता है कि संघ के साथ वित्तीय गठबंधन से जम्मू-कश्मीर राज्य को कितना विपुल लाभ हुआ है। सातवें पंचवर्षीय योजना काल में राज्य को केन्द्र से १८३८ करोड़ रुपये मिले—१४०० करोड़ रुपये योजना-व्यय के लिए और ४३८ करोड़ रुपये गैर-योजना संसाधन के घाटे को पूरा करने के लिए। विगत ४३ वर्षों में संघीय सरकार ने जम्मू-कश्मीर राज्य के पेट में कई हजार करोड़ रुपये झोंक दिये हैं। इस राज्य को केन्द्र से प्रति व्यक्ति आर्थिक सहायता राष्ट्रीय औसत से कहीं अधिक मिलती रही है। वह केन्द्र के कुल अनुदान का २.५७ प्रतिशत प्राप्त कर रहा है जबकि उसकी जनसंख्या देश की जनसंख्या का ०.८ प्रतिशत है। यथा, वर्ष १९८९-९० में जम्मू कश्मीर के लिए प्रति व्यक्ति केन्द्रीय अनुदान ११२२ रुपये का था जबकि वह हिमाचल प्रदेश के लिए ५५२ रुपये का, असम के लिए ४२५ रुपये का, बिहार के लिए १०९ रुपये का, उत्तर प्रदेश के लिए ९१ रुपये का और पश्चिमी बंगाल के लिए ६७ रुपये का था।

आइए, एक और प्रकरण पर विचार करें। उसका संबंध जम्मू-कश्मीर पर संविधान के अनुच्छेद ३५६ के विस्तार से है। इस अनुच्छेद के अधीन राष्ट्रपति राज्य में राष्ट्रपति-शासन लागू कर सकते हैं। प्रायः यह कहा जाता है कि इस अनुच्छेद का विस्तार राज्य की स्वायत्तता का अतिक्रमण करता है। परन्तु कोई भी उससे जुड़ा यह प्रश्न नहीं करता है कि यदि राज्य में संविधान-तंत्र ठप्प हो जाये या यदि राज्य रक्षा, वैदेशिक मामलों अथवा संचार से संबंधित किसी निर्देश का पालन न करे तो अनुच्छेद ३५६ के अधीन राष्ट्रपति की शक्तियाँ न होने पर क्या होगा? मान लीजिए तत्सम शक्तियाँ राज्यपाल के पास हैं, तो क्या इसका अर्थ यह नहीं होगा कि राष्ट्रपति को अपने ही द्वारा नियुक्त राज्यपाल का निर्णय स्वीकार करना होगा? पुनः मान लीजिए कि राज्यपाल को सदरे रियासत बना दिया जाता है जिसे राष्ट्रपति नियुक्त नहीं करते बल्कि जिसका चुनाव राज्य-विधानसभा करती थी, तो क्या अंतिम निर्णय का अधिकार सदरे रियासत को प्रदान करना संघ को राज्य के अधीन करने जैसा नहीं होगा?

एक अन्य व्यावहारिक समस्या को लें। रक्षा संघीय विषय है जबकि भूमि अर्जन राज्य को सौपा गया विषय है। यदि केन्द्रीय सरकार किसी स्थान विशेष पर छावनी बनाना चाहती है तो उसके लिए भूमि का अर्जन राज्य सरकार को ही करना होगा। मान लीजिए कि राज्य सरकार उस भूमि का अर्जन करने से इंकार कर देती है तो केवल एक ही मार्ग बचेगा कि अनुच्छेद ३५६ के उपबंधों को लागू करके राष्ट्रपति की इच्छा का आरोपण किया जाये। या यों कहिए कि दिन- प्रतिदिन के प्रशासन- कार्य में ऐसे अनेक मामले उठ सकते हैं जिनमें राज्य को संघ की आवश्यकताओं को पूरा करना होगा। और यदि राज्य संघ की आवश्यकताओं को पूरा करने से इंकार कर दे तो संघ की इच्छा को लागू करना पड़ेगा।

आजकल पूर्वी यूरोप में स्वायत्तता के पक्ष में जो हवा चल रही है, उसे कभी- कभी तर्क के रूप में प्रस्तुत करके कहा जाता है कि कतिपय प्रदेशों को और अधिक स्वायत्तता दी जाये। लेकिन इस तर्क को प्रस्तुत करते समय हमारे सामाजिक तथा आर्थिक विकास की स्थिति की अनदेखी की जाती है। गरीबी, पिछड़ेपन, निरक्षरता, रूढ़िवादिता, तथा संकीर्णता की समस्याओं का निपटारा करने से पूर्व और अधिक स्वायत्तता की बात करना गाड़ी को घोड़े के आगे रखने जैसा होगा। हमें नकल करके स्वयं को नष्ट नहीं करना चाहिए। हमारे 'युद्धनेता' स्वाधीनता तथा मानव- विकास के किन्हीं उच्चतर सिद्धान्तों से प्रेरणा नहीं लेंगे वरन् क्षुद्र तथा संकीर्ण दृष्टिकोण अपनायेंगे और चारों ओर रक्त तथा दरिद्रता की नदियाँ बहवा देंगे। परदेसी पर्यावरणों से उधार ली गयी स्वायत्तता की ऐसी मिथ्या धारणाएँ देश को खंड- खंड तथा समाज को टूक- टूक कर देगी।

जो लोग कश्मीर की स्वायत्तता की बात करते हैं, वे जम्मू- कश्मीर राज्य की विशाल एवं विविधतापूर्ण सामाजिक सांस्कृतिक विशिष्टता की उपेक्षा करते हैं। कश्मीरियों की आकांक्षाएँ अलग हैं। वे 'एक विधान, एक निशान, एक प्रधान' में विश्वास करते हैं। उनकी संस्कृति और व्यक्तित्व अलग- अलग हैं। पुंछ तथा राजौरी के मुस्लिमों की अलग सांस्कृतिक पहचान है। यही स्थिति हिमाचल प्रदेश की सीमा के निकट रहने वाले लोगों की है। गूजरों तथा बकरवालों का भी अलग समूह है। लद्दाख तो नितांत भिन्न है।

यदि अनुच्छेद ३७० को बनाये रखा जाता है या स्वायत्तता के प्रश्न को आवश्यकता से अधिक उछाला जाता है तो हर प्रादेशिक तथा सांस्कृतिक इकाई कश्मीरियों के वर्चस्व को समाप्त करने के लिए अनुच्छेद ३७० अथवा स्वायत्तता जैसी ही किसी वस्तु की मांग करेगी । दावों तथा प्रतिदावों का अन्तहीन सिलसिला छिड़ जायेगा और राज्य का तानाबाना और भी छिन्न- भिन्न हो जायेगा ।

जम्मू प्रदेश के लोगों को काफी लम्बे समय से यह शिकायत रही है कि अनुच्छेद ३७० तथा राज्य- संविधान की आड़ में घाटी के नेता वर्षों से निर्णयों में इस प्रकार हेराफेरी करते रहे हैं कि राज्य में सत्ता- संरचना का पलड़ा सदैव कश्मीर प्रदेश के पक्ष में भारी रहा है । इस संबंध में यह कहा जाता है कि जम्मू से हर १४ लाख की जनसंख्या पर एक प्रतिनिधि लोकसभा में चुना जाता है जबकि कश्मीर से हर १० लाख की जनसंख्या पर एक प्रतिनिधि चुना जाता है । जम्मू का कुल क्षेत्रफल कश्मीर के क्षेत्रफल से ७० प्रतिशत बड़ा है और उसकी जनसंख्या राज्य की जनसंख्या का ४५ प्रतिशत है । किन्तु राज्य- विधानसभा की ७६ सीटों में से जम्मू के पास केवल ३२ सीटें हैं और कश्मीर के पास ४२ सीटें । विधानसभा में जम्मू से हर ६० हजार की जनसंख्या पर एक सदस्य चुना जाता है और कश्मीर से हर ७३ हजार की जनसंख्या पर । जहाँ १९७९ में घाटी में अचानक तीन नये जिले बना दिये गये वहाँ (१९८१- ८३ के) वजीर कमीशन द्वारा अनुशंसित तीन जिलों में से कोई भी जिला जम्मू प्रदेश में नहीं बनाया गया है । योजना- राशि का वितरण भी समुचित नहीं है । यथा, घाटी में औसत से लगभग ५ लाख पर्यटक ही आते हैं जबकि जम्मू के अकेले वैष्णो देवी मंदिर के दर्शनार्थ ही २० लाख से अधिक सांस्कृतिक तथा श्रद्धालु पर्यटक आते हैं । उससे राज्य का भारी आर्थिक विकास होता है । इन पर्यटकों को मूलभूत सुविधाएँ प्रदान करने के लिए राज्य लगभग कुछ भी खर्च नहीं करता । यहाँ तक कि कटरा को जाने वाली वह सड़क भी बहुत सँकरी है जिस पर प्रतिदिन हजारों बसें तथा अन्य वाहन चलते हैं । दूसरी ओर बड़ी- बड़ी राशियों का, कभी- कभी तो पर्यटक बजट की ६० प्रतिशत राशि का आबंटन घाटी को कर दिया जाता है । दो वर्तमान परियोजनाओं, गुलमर्ग केबिल कार तथा श्रीनगर गोल्फ कोर्स पर ही ५० करोड़ रुपये खर्च हो जायेंगे । दुर्लभ कलाकृतियों वाली डोगरा आर्ट गैलरी की घोर उपेक्षा की गयी है । पुनः जहाँ जम्मू प्रदेश का कुल क्षेत्रफल २६२६३ वर्ग किलोमीटर है और उसमें

३५०० किलोमीटर लम्बी सड़कें हैं , वहाँ कश्मीर प्रदेश का क्षेत्रफल तो १५८५३ वर्ग किलोमीटर है पर उसमें ४६०० किलोमीटर लम्बी सड़कें हैं। इस प्रकार जम्मू के १८ प्रतिशत क्षेत्र में ही सड़कें बिछी हैं जबकि कश्मीर का तत्संबंधी प्रतिशत ४० है।

लद्दाख में भी इस बारे में बड़ा रोष है कि अनुच्छेद ३७० के लाभ की तुला कश्मीरी नेताओं के हाथों में सौप दी गयी है। उनकी शिकायत है कि होना तो यह चाहिए था कि वे स्वतंत्र भारत के स्वतंत्र सपूत होते, पर उसके स्थान पर उन्हें कश्मीरियों की दया पर जीने के लिए छोड़ दिया गया है। प्राय उन्हें कहते हुए सुना जाता है, "यदि भारत हमें कश्मीरियों की गुलामी में रखना चाहता है तो वह तो चीनियों की गुलामी जैसा ही कलंक है।" बहुत पहले १६४६ में ही लद्दाखी बौद्ध संघ ने प्रधान मंत्री नेहरू से अति भावप्रवण अपील की थी कि लद्दाख को सीधे केन्द्रीय सरकार के संरक्षण में ले लिया जाये। उसने कहा था, "तिब्बत भारत की सांस्कृतिक सुपुत्री है और हम निचले तिब्बत के वासी अपनी महामहिमामयी माता की ममतापूर्ण गोद में बैठकर पूर्ण विकास के लिए पूर्वाधिक पोषण प्राप्त करना चाहते हैं। क्या महान माता (भारत) अपने सर्वाधिक अशक्त, उपेक्षित तथा दुखी बच्चों को अपनी बाँहों में नहीं लेगी ?" कैसा दुर्भाग्य ! ऐसी उदात्त भावनाओं का कोई सार्थक प्रभाव नहीं पड़ा और अनुच्छेद ३७० के उपबंधों के साये में घाटी के नेताओं ने लद्दाख पर लगभग निरंकुश सा नियंत्रण प्राप्त कर लिया। उन्होंने लद्दाखियों को उन संस्थागत संरक्षणों से भी वंचित कर दिया जो देश में अन्यत्र उपलब्ध थे। जुलाई - सितम्बर १६८६ में लद्दाखी बौद्धों ने जो उग्र आन्दोलन किया, वह उनके अनुसार कश्मीरी वर्चस्व तथा शोषण के विरुद्ध उनके प्रबल रोष की अभिव्यक्ति थी।

जम्मू- कश्मीर में सबसे पहला काम स्वायत्तता के खोटे सिक्के को चलाना तथा सांस्कृतिक अस्तित्व के नाम पर लोगों को मूर्ख बनाना नहीं है बल्कि गरीबी, भूख, बीमारी को दूर करना है और साधनविहीन तथा शोषितों की समानताओं पर बल देकर संतुलित विकास करना है। सच्ची स्वाधीनता एवं लोकतंत्र तभी होगा जब पिछड़ेपन को मिटा दिया जायेगा। अन्यथा कश्मीरी संस्कृति का विकास भी अवरुद्ध हो जायेगा। वास्तव में अनुच्छेद ३७० का निरसन गरीबी तथा पिछड़ेपन को मिटाने में सहायक होगा और उसके फलस्वरूप कश्मीरी संस्कृति के पुनरुत्थान तथा सम्पूर्ण

राज्य के सांस्कृतिक व्यक्तित्व को निखारने में सहायता मिलेगी । कोई भी संस्कृति अलग-थलग उजाड़ बियावान में नहीं पनप सकती । उसके लिए पर-संसेचन आवश्यक है । उसके लिए संसर्ग का उद्दीपन आवश्यक है ।

कुछ नेता तथा विश्लेषणकर्ता कहते रहते हैं कि अनुच्छेद ३७० तो आस्था का विषय है । लेकिन वे वहीं रुक जाते हैं । वे स्वयं से यह प्रश्न नहीं करते कि इस आस्था का अर्थ क्या है ? इसका तर्कधार क्या है ? क्या राज्य को भारतीय संविधान के पूरे चौखटे के भीतर ही फिट कर देने से यह आस्था और अधिक खोजपूर्ण तथा प्रभावोत्पादक नहीं हो जायेगी तथा और अधिक न्यायोचित तथा सार्थक नहीं बन जायेगी ?

इसी शैली में ऐतिहासिक आवश्यकता तथा स्वायत्तता जैसे शब्दों का उपयोग किया जाता है । व्यवहार में इन शब्दों का क्या अर्थ है ? क्या ऐतिहासिक आवश्यकता का अर्थ यह लगाया जाय कि आप एक हाथ से तो भारी मूल्य दे कर कश्मीर को कागज पर भारत संघ में शामिल कर लें और दूसरे हाथ से व्यवहार में उसे सुनहरी तश्तरी पर सजाकर वापस कर दें ? और स्वायत्तता अथवा तथाकथित १९५३ से पूर्व की अथवा १९४७ से पूर्व की स्थिति का क्या अर्थ लगाया जाये ? कश्मीरी नेताओं के अनुसार क्या इसका अर्थ यह नहीं होगा : 'देंगे आप और खर्च करूंगा मैं; आपको मुँह खोलने का कोई अधिकार नहीं होगा' भले ही मैं एक भ्रष्ट तथा निर्मम गुटतंत्र की स्थापना कर दूँ और ऐसी स्थिति पैदा करा दूँ जिसमें अलगाववाद की नंगी तलवार सदैव आपके सिर पर लटकती रहे ?'

क्या अनुच्छेद ३७० को निरस्त किया जा सकता है ? यदि हाँ तो कैसे ? कभी-कभी यह तर्क दिया जाता है कि संविधान राज्य की संविधान-सभा के अनुमोदन के बिना इस अनुच्छेद को निरस्त करने की अनुमति नहीं देता । यह कहा जाता है कि सरसरी तौर पर संविधान को पढ़ लेने से भी इस संबंध में स्थिति स्पष्ट हो जाती है । अनुच्छेद ३७० का सम्बद्ध अंश इस प्रकार है :

> "इस अनुच्छेद के पूर्वगामी उपबंधों में किसी बात के होते हुए भी, राष्ट्रपति लोक अधिसूचना द्वारा घोषणा कर सकेगा कि यह अनुच्छेद प्रवर्तन में नहीं रहेगा...

"परन्तु राष्ट्रपति द्वारा ऐसी अधिसूचना जारी किये जाने से पहले खंड (२) में निर्दिष्ट उस राज्य की संविधान- सभा की सिफारिश आवश्यक होगी।"

राष्ट्रपति की घोषणा की एक अनिवार्य पूर्वापेक्षा राज्य- संविधानसभा की संस्तुति है। दूसरे शब्दों में, भले ही संघीय सरकार इस अनुच्छेद के निरसन का निर्णय कर ले, फिर भी वह सांविधानिक रूप से स्वयं ऐसा नहीं कर सकती क्योंकि इसके लिए राज्य की संविधानसभा को बीच में लाना होगा और उसकी सिफारिश प्राप्त करनी होगी। संविधान के अनुच्छेद ३६८ का संशोधन करने की शक्तियाँ भी इसमें सहायक नहीं होंगी।

इसकी आड़ में उक्त तर्क प्रभावशाली है। लेकिन संविधान के किसी भी उपबंध को अकेले नहीं पढ़ा जाता। अनुच्छेद १ इससे कहीं अधिक मूल महत्व का है। उसमें कहा गया है :

"१. संघ का नाम और राज्यक्षेत्र : भारत अर्थात् इंडिया राज्यों का संघ होगा।

२. राज्य और उनके राज्यक्षेत्र वे होंगे जो पहली अनुसूची में विनिर्दिष्ट हैं।

३. भारत के राज्यक्षेत्र में

(क) राज्यों के राज्यक्षेत्र,

(ख) पहली अनुसूची में विनिर्दिष्ट राज्यक्षेत्र और

(ग) ऐसे अन्य राज्यक्षेत्र जो अर्जित किये जायें, समाविष्ट होंगे।"

जम्मू तथा कश्मीर संविधान की पहली अनुसूची में १५ वाँ राज्य है और अनुच्छेद १ उस पर संपूर्णतः लागू होता है। दूसरी ओर अनुच्छेद ३७० अस्थायी है। स्वयं संविधान के भाग २१ का शीर्षक है : 'अस्थायी, संक्रमणकालीन और विशेष उपबंध'। अतः अनुच्छेद ३७० को बनाते समय विचार यह था कि यह अल्प समय

के लिए होगा और संक्रमणकाल के लिए प्रभावी रहेगा । चूँकि अब राज्य की संविधान- सभा ही अस्तित्व में नहीं रही, अतः अनुच्छेद ३७० के अधीन उसकी सहमति का प्रश्न ही नहीं उठता । मृत अथवा अस्तित्वहीन संस्था की सहमति का कोई अर्थ नहीं है । अतः संघीय संसद् जो राज्य के लोगों का भी प्रतिनिधित्व करती है, अनुच्छेद ३६८ के अधीन संविधान में संशोधन कर सकती है । उसके बाद राज्य- संविधानसभा की सहमति की अपेक्षा करने वाले परन्तुक का विलोपन किया जा सकता है । इस विलोपन के बाद राष्ट्रपति आवश्यक घोषणा कर सक्ते हैं और अनुच्छेद निरस्त हो जायेगा ।

जब संविधान के दो उपबंधों के बीच कोई विसंगति होती है तो अधिक मूल प्रकार का उपबंध अभिभावी होगा । संविधान का निर्वचन करते समय न्यायालयों को परिवर्तित परिस्थितियों तथा उस व्यापक राष्ट्रीय उद्देश्य की ओर समुचित ध्यान देना होगा जिसके लिए संविधान की संरचना की गयी थी । जैसा कि कहा जा चुका है, अनुच्छेद १ मूल महत्व का है । उसका संबंध देश की राज्यक्षेत्रीय अखंडता से है । सोवियत संघ के राज्यों की भाँति किसी भी राज्य को अलग होने का कोई अधिकार नहीं है । समूचे देश से संबधित राज्यक्षेत्रीय तथा राजनीतिक विषयों पर संघीय सरकार का अधिकार- क्षेत्र है और यह सुनिश्चय करना उसका सर्वोपरि अधिकार है कि ऐसी कोई बात न होने पाये जिसका हानिकर प्रभाव देश की राज्यक्षेत्रीय अखंडता पर पड़ता हो ।

कश्मीर की वर्तमान स्थिति से पता चल जाता है कि अनुच्छेद ३७० ने अलगाववादी मानसिकता पैदा की है और इससे संघ की राज्यक्षेत्रीय अखंडता को खतरा पैदा हो गया है । अतः संघीय संसद् को कार्यवाही करनी ही चाहिए । और जब न्यायालयों से संविधान का निर्वचन करने तथा अनुच्छेद १, अनुच्छेद ३६८ और अनुच्छेद ३७० के बीच तालमेल बैठाने का अनुरोध किया जाये तो उन्हें राज्यक्षेत्रीय अखंडता के पक्ष में दिये गये तर्क को स्वीकार करना ही चाहिए और अनुच्छेद ३७० के विलोपन के ससंद के निर्णय में हस्तक्षेप करना ही नहीं चाहिए, विशेषतः उस स्थिति में जब इस अनुच्छेद का दुरुपयोग अन्याय के साधन के रूप में किया जा रहा है और स्वयं न्यायालय का मूल उद्देश्य न्याय को सुनिश्चित करना तथा अन्यायपूर्ण

स्थितियों को समाप्त करना है । दूसरे शब्दों में, यदि न्यायालय सांविधान का रचनात्मक तथा गत्यात्मक निर्वचन करता है तो अनुच्छेद ३६८ के अधीन संविधानिक संशोधन द्वारा अनुच्छेद ३७० के उपखंड का विलोपन कर दिये जाने के बाद वह अनुच्छेद ३७० के विलोपन को निश्चय ही उचित ठहरायेगा ।

भारत के संविधान के अनुच्छेद ३५५ के उपबंध भी अति महत्वपूर्ण हैं । यह अनुच्छेद भारत संघ पर इस दायित्व का भार डालता है कि वह विदेशी आक्रमण तथा आंतरिक उपद्रवों से राज्यों की रक्षा करे । यदि अनुच्छेद ३७० इस सर्वोपरि सांविधानिक कर्तव्य के पालन में भारत संघ के मार्ग में बाधा डालता है तो उसे समाप्त होना चाहिए । वर्तमान संदर्भ में जब कश्मीर पर विदेशी आक्रमण तथा आंतरिक विद्रोह दोनों का खतरा मंडरा रहा है और अनुच्छेद ३७० इस बारे में काफी सहायता प्रदान कर रहा है कि विद्रोही तत्व आंतरिक दंगे करा सकें और विदेशी आक्रमण के लिए मार्ग प्रशस्त कर सकें तो संघीय सरकार के लिए यह आवश्यक हो जाता है कि वह इस अनुच्छेद के विलोपन के लिए कार्यवाही करे ताकि वह अनुच्छेद ३५५ के अधीन उस पर डाले गये दायित्व को पूरा कर सके । अतः यदि अनुच्छेद ३७० को अनुच्छेद १ तथा अनुच्छेद ३५५ के साथ पढ़ा जाता है तो अनुच्छेद ३७० के परन्तुक के विलोपन के लिए अनुच्छेद ३६८ के अधीन संविधान में संशोधन पूर्णतया वैध होगा और परन्तुक के कथित विलोपन के बाद सम्पूर्ण अनुच्छेद ३७० का विलोपन करने वाली राष्ट्रपति की घोषणा स्थिति को नितांत स्पष्ट कर देगी ।

यह भी उल्लेखनीय है कि अनुच्छेद ३५क का विलोपन करके अनुच्छेद ३७० के दाँतों को उखाड़ा जा सकता है । इस विलोपन से अनुच्छेद १६(१)(ङ), (छ) समूचे भारत पर पूर्णतः प्रभावी होंगे । अनुच्छेद (१)(ङ) और (छ) घोषणा करते हैं कि :

"सभी नागरिकों को (क) भारत के राज्यक्षेत्र के किसी भाग में निवास करने और बस जाने का तथा (ख) कोई वृत्ति, उपजीविका, व्यापार या कारोबार करने का अधिकार होगा ।"

भारतीय संविधान का भाग ३ तो जम्मू- कश्मीर राज्य पर लागू हो ही चुका है । अनुच्छेद १६(१)(ङ) और (छ) को बिना किसी बाधा के लागू करने से कोई भी भारतीय जम्मू- कश्मीर में बस सकेगा और आवास तथा नागरिकता के अधिकारों के

संबंध में जम्मू तथा कश्मीर के संविधान के सभी असंगत, अन्यायपूर्ण तथा कालातीत उपबंध समाप्त हो जायेंगे जो भारतीय संविधान से मेल नहीं खाते।

राज्य की प्रजा संबंधी प्रतिबन्धों के समर्थक कभी-कभी यह कहते रहे हैं कि १९४७ के बाद प्रतिबंध राज्य सरकार अथवा शेख अब्दुल्ला ने नहीं लगाये थे बल्कि १८९३ में डोगरा तथा पंडित सभाओं के अभ्यावेदन पर महाराजा ने लगाये थे। यह तर्क नितांत अनुचित है। हमारा मार्गदर्शन १८९३ के मूल्य, चिन्तन तथा परिस्थितियाँ नहीं वरन् आज की आकांक्षाएँ तथा भारतीय संविधान के मूल सिद्धान्त कर रहे हैं। जो न्याय के विपरीत है, उसे समाप्त करना ही होगा भले ही उसकी पृष्ठभूमि कुछ भी हो। इन प्रतिबन्धों के अनौचित्य को बहुत पहले १९३१-३२ में ही ताड़ लिया गया था जब शिकायत-समिति के अध्यक्ष बर्ट्रैंड ग्लेंसी ने अपनी रिपोर्ट में कहा था : "राज्य-प्रजा की वर्तमान परिभाषा अनुचित रूप से कठोर दीख पड़ती है। उस परिभाषा के अनुसार तो राज्य में एक हजार वर्ष का अधिवास भी किसी व्यक्ति को अर्ह नहीं बना सकेगा। ऐसे किसी व्यक्ति को जिसने लगातार पाँच वर्ष तक राज्य में अधिवास करके स्थानीय हितों के साथ अपना नाता जोड़ लिया है, मतदान के अधिकार से वंचित करना न तो उचित दीख पड़ेगा और न ही समीचीन।"

इन प्रतिबंधों को जारी रखा गया और सांविधानिक संरक्षण प्रदान किया गया। इसके पीछे जो इरादे थे, उनमें ईमानदारी का अभाव था। जानबूझ कर इस तथ्य को भुला दिया गया कि महाराजा ने ये प्रतिबंध मुख्यतः इसलिए लगाये थे कि अंग्रेजों को कश्मीर में प्रवेश न करने दिया जाये।

उन विस्थापितों के प्रसंग में, जिनकी दुर्दशा की संक्षिप्त चर्चा में इस अध्याय में कर चुका हूँ, उच्चतम न्यायालय ने स्वीकार किया कि उनके साथ अन्याय हो रहा है, लेकिन अनुच्छेद ३७० तथा राज्य-संविधान के उपबंधों तथा उनके अधीन बनाये गये कानूनों के कारण वह कोई राहत प्रदान नहीं कर सका। उच्चतम न्यायालय के विचारों के सम्बद्ध अंश को मैं नीचे उद्धत करना चाहूंगा :

"१९४७ के विभाजन के फलस्वरूप जो लोग पश्चिमी पाकिस्तान से आकर जम्मू-कश्मीर में बस गये हैं, वे भारत के तो नागरिक हैं और उन्हें संसदीय चुनावों में भाग लेने का भी अधिकार है, लेकिन राज्य में उन्हें बड़े ही असंगत अधिकार प्राप्त

हैं। उनका नाम राज्य- विधानसभा की मतदाता- सूची में अंकित नहीं किया जा सकता, उन्हें ग्राम- पंचायत के लिए नहीं चुना जा सकता। वे न तो भूमि खरीद सकते हैं और न ही राज्य सरकार की कोई नौकरी प्राप्त कर सकते हैं। ये सभी वंचनाएँ तथा वर्जनाएँ जम्मू- कश्मीर संविधान की धारा ६ के अधीन स्थायी निवास की परिभाषा के ही कुफल हैं। यहाँ इस बात पर ध्यान देना होगा कि इन उपबंधों को इस आधार पर चुनौती नहीं दी जा सकती कि भारत के संविधान के भाग ३ द्वारा प्रदत्त अधिकार से वे मेल नहीं खाते क्योंकि संविधान के अनुच्छेद ३७० (१) (घ) के अधीन भारत के राष्ट्रपति ने संविधान आदेश, १९५४ जारी किया था और उसक द्वारा जम्मू- कश्मीर राज्य के संबंध में अनुच्छेद ३५(क) जोड़ा गया था। उसी का परिणाम है कि यद्यपि ये लोग भारत के नागरिक हैं और उन्हें संविधान द्वारा प्रदत्त अनेक मूल अधिकार प्राप्त हैं, फिर भी वे जम्मू- कश्मीर राज्य में इनमें से अनेक अधिकारों का लाभ नहीं उठा सकते, भले ही वे उस राज्य में ४० वर्षों से भी अधिक समय से बसे हुए हैं।

"इन परिस्थितियों में, जम्मू- कश्मीर राज्य की विचित्र सांविधानिक स्थिति को देखते हुए, इन विस्थापितों को राहत दे सकने का कोई उपाय हमें नहीं दीख पड़ता। हम केवल यही कह सकते हैं कि उनकी स्थिति दुविधापूर्ण है और यह जम्मू- कश्मीर विधानमंडल का काम है कि वह जम्मू- कश्मीर लोक- प्रतिनिधित्व अधिनियम, भूमि अन्य संक्रामण अधिनियम, ग्राम- पंचायत अधिनियम आदि जैसे कानूनों में संशोधन करे ताकि वे लोग, जो १९४७ में पाकिस्तान से आकर वहाँ बस गये हैं और तब से अब तक वहीं रह रहे हैं, मतदाता- सूची में शामिल किये जा सकें, भूमि खरीद सकें और पंचायतों के लिए चुने जा सकें, आदि आदि। ऐसा कानूनों में समुचित संशोधन करके किया जा सकता है। उसके लिए जम्मू- कश्मीर के संविधान में संशोधन करने की आवश्यकता नहीं है। जहाँ तक राज्य सरकार के अधीन रोजगार के अवसर दिलाने का संबंध है, उसके लिए राज्य सरकार जम्मू- कश्मीर नागरिक सेवा नियमों में संशोधन कर सकती है। उच्चतम प्राविधिक (तकनीकी) शिक्षण संस्थाओं में प्रवेश के संबंध में भी राज्य सरकार उपयुक्त प्रशासी निर्देश जारी करके इन व्यक्तियों को पात्र बना सकती है। उसके लिए तो कोई विधान प्रस्तुत करने की भी आवश्यकता नहीं है।

याचिका प्रस्तुत करने वालों की शिकायत में औचित्य है । निश्चय ही उन्हें यह आशा करने का अधिकार है कि जम्मू- कश्मीर राज्य उनकी रक्षा करे ।"

उच्चतम न्यायालय के इन सुझावों की उपेक्षा कर दी गयी है कि ऐसे अनुचित कानूनों में राज्य विधानमंडल संशोधन कर सकता है । राज्य के शासकों का मूल दायित्व तो न्याय देना है पर दुर्भाग्यवश वे घटिया राजनीति का खेल खेल रहे हैं, छोटी- छोटी जागीरें बना रहे हैं और विभिन्न प्रदेशों के निर्धनों तथा साधनहीनों को सदाबहार व्यवस्थाविहीनता तथा विग्रह के वातावरण में रहने पर विवश कर रहे हैं ।

कभी- कभी यह दलील दी जाती है कि हिमाचल प्रदेश सरकार ने भी तो राज्य में बाहर वालों के लिए भूमि की खरीददारी पर वैसे ही प्रतिबंध लगा रखे हैं । यह तुलना भी भ्रान्त धारणा पर आधारित है । हिमाचल प्रदेश के कानून को केन्द्रीय सरकार ने उस समय बनाया था जब वह संघ- राज्यक्षेत्र था । इस कानून का प्रमुख उद्देश्य गरीब तथा भोले- भाले किसानों के हितों का संरक्षण करना है । भारतीय संविधान के अधीन इसकी संविधानिक समीक्षा की जा सकती है और वह मूल अधिकारों के अधीन है । न्यायालय ऐसे किसी भी उपबंध को निरस्त कर सकते हैं जो भारतीय संविधान के अधीन अर्हता का पात्र नहीं है और मूल अधिकारों के अधीन है । न्यायालय ऐसे किसी भी उपबंध को निरस्त कर सकते हैं जो युक्तिमुक्त प्रतिबंधों के खंड के अधीन अर्हता का पात्र न हो । इसके अतिरिक्त यह प्रतिबन्ध निरंकुश नहीं है । कृषि- भूमि को राज्य सरकार की अनुमति से खरीदा जा सकता है । जम्मू- कश्मीर के मामले में प्रतिबंध निरंकुश है और उच्चतम न्यायालय भी उस पर अंकुश नहीं लगा सकता जैसा कि ऊपर उद्धृत निर्णय में बताया गया है ।

२१ अगस्त १९६२ को अनुच्छेद ३७० के संबंध में प्रेमनाथ बजाज के पत्र के उत्तर में जवाहरलाल नेहरू ने लिखा था:

> "आईन के इस आर्टिकिल को कश्मीर को खास दर्जा देने वाला माना जाता है पर इसके बावजूद दरअसल बहुत कुछ किया जा चुका है और थोड़ा सा जो बाकी बचा है, वह धीरे- धीरे हो जायेगा । मसला जज्बे से ज्यादा ताल्लुक रखता है, और कोई चीज उसका मुकाबला नहीं कर सकती । कभी- कभी ज़ज्बा अहम होता है लेकिन हमें दोनों

पलड़ों को तोलना है और मेरा ख्याल है कि फिलहाल इस मामले में कोई तब्दीली नहीं की जानी चाहिए।"

पत्र से पता चलता है कि स्वंय नेहरू ने अनुच्छेद ३७० के संबंध में भावी परिवर्तन की संभावना से इंकार नहीं किया। जहाँ तक भावनाओं का संबंध है, अब तक यह पर्याप्त स्पष्ट हो चुका है कि उन्होंने विपरीत दिशा में कार्य किया है और अलगाववादी तथा विध्वंसकारी मनोवृत्ति को पनपाया है और उसके फलस्वरूप देश की एकता तथा अखंडता ही खतरे में पड़ गयी है। अब समय आ गया है कि इस बीज ने जिस हानिकर पौधे का रूप ले लिया है, उसे समूल उखाड़ फेंक दिया जाये।

अनुच्छेद ३७० को बनाये रखने के औचित्य के पक्ष में कभी- कभी यह कहा जाता है कि यह एक सुरंग है, कोई दीवार नहीं है। ४ दिसम्बर १९६४ को तत्कालीन केन्द्रीय गृह- मंत्री गुलजारीलाल नंदा ने कहा था : "इस सुरंग के माध्यम से काफी यातायात हो चुका है और अब और भी अधिक होगा।" कुछ दिन बाद शिक्षा- मंत्री एम.सी. छागला ने कहा था : "अनुच्छेद ३७० के माध्यम से जम्मू- कश्मीर पर संपूर्ण भारतीय संविधान लागू किया जा सकता है।"

हो सकता है कि सिद्धान्ततः यह एक उत्तम दृष्टिकोण लगे, पर यह इस नग्न सत्य की अवहेलना करता है कि इस सुरंग के दरवाजों पर किसी और का नियंत्रण है। क्या होगा यदि इस सुरंग को बन्द कर दिया जाये जैसा कि १९७५ के बाद कर दिया गया था ? इसका एकमात्र अपवाद वह अवधि है जब ७ मार्च से ६ सितम्बर, १९८६ तक राज्यपाल का शासन रहा। अन्यथा भी, किसी ख़तरनाक सुरंग से होकर जाने में क्या तुक है जब एक सीधा सपाट, पक्का और चौड़ा मार्ग सामने है ?

कभी- कभी यह तर्क भी दिया जाता है कि अनुच्छेद ३७० को रद्द कर दिया जाता है तो भारत से कश्मीर का संबंध ही टूट जायेगा। यह तो कानून की बाल की खाल निकालना है और व्यवहार में उसका कोई अर्थ नहीं है। क्या भारत पुनः उपनिवेश बन जायेगा यदि ब्रिटिश संसद् भूतलक्षी प्रभाव से भारतीय स्वाधीनता अधिनियम में संशोधन कर दे जिसे वैध रूप से वह कर सकती है ?

उक्त तर्क भारतीय संविधान के अनुच्छेद १ तथा अन्य उपबंधों की भी अनदेखी करता है। यह मान लेता है कि अनुच्छेद ३७० के विलोपन के बाद परिशोधन अथवा

स्पष्टीकरण अथवा विस्तरण के रूप में कुछ भी नहीं जोड़ा जायेगा। यह भी मान लेता है कि आज का भारत वैसा ही है जैसा कि ब्रिटिश संसद चाहती थी और पहले भी कश्मीर भारत का अंग नहीं था। यह कानून की संकीर्ण प्राविधिकता को मूल वास्तविकता यानी भारत से वरीयता देता है। वस्तुतः भारत तो कश्मीर से कन्याकुमारी तक बसे भारतवासियों के मन एवं मस्तिष्क में समाया हुआ है। भारत तो भारतवासियों की बुद्धि और भावना, उनके दर्शन और काव्य, उनके जीवन और साहित्य की उपज है। रूसी नोबेल पुरस्कार विजेता सोल्जेनित्सिन ने ठीक ही कहा है: "कोई भी समाज जो कानून के अक्षर पर टिका है और उससे ऊपर नहीं उठ पाता, वह मानवीय क्षमताओं के उच्च स्तर का अति अल्प लाभ उठा पाता है। कानून का अक्षर इतना भावशून्य होता है कि उसका समाज पर कोई लाभकारी प्रभाव नहीं पड़ता। जब भी जीवन की समस्या को कानूनबाजी के धागों से बुना जाता है तो नैतिक बौनेपन का वातावरण छा जाता है और वह मानव की परम उदात्त भावनाओं का गला घोंट देता है।" इस शैली में टामस ज़ेफ़र्सन ने कहा है: "कानून तथा संस्थानों को मानव-मस्तिष्क की प्रगति के साथ-साथ चलना ही पड़ेगा... क्या हम किसी व्यक्ति से अपेक्षा कर सकते हैं कि वह उसी कोट को पहने जो वह बचपन में पहनता था? क्या हम सभ्य समाज से अपेक्षा कर सकते हैं कि वह सदैव अपने पूर्वजों की लकीर का फकीर ही बना रहे?"

इतिहास हमें यह भी सिखाता है कि जब सभ्यताएँ स्वयं को धोखा देने लगती हैं, जब वे कानूनी प्राविधिकता को, कानूनी दाँवपेंचों को मूलभूत न्याय समझने की भूल करने लगती हैं तो उनका पतन होने लगता है। एक गतिशील तथा प्रगतिशील समाज के विधि-संस्थानों को बदलती हुई सामाजिक तथा आर्थिक वास्तविकताओं के साथ तालमेल बिठाना पड़ता है। उन्हें नयी उमंगों तथा आकांक्षाओं की ओर ध्यान देना ही पड़ेगा।

अब तो इस बारे में सन्देह नहीं रहना चाहिए कि अनुच्छेद ३७० तथा उसके प्रतिफल जम्मू-कश्मीर के अलग संविधान को समाप्त करना ही होगा, न केवल इसलिए कि ऐसा करना वैधानिक तथा सांविधानिक रूप से संभव है बल्कि इसलिए भी कि हमारे विगत इतिहास तथा समसामयिक जीवन के अधिक महत्वपूर्ण तथा अधिक

मूल पक्ष इसकी अपेक्षा करते हैं। इस अनुच्छेद तथा उसके तामझाम को निरस्त किया जाना चाहिए। यह अनवरत अन्यायों तथा असमानताओं का अस्त्र बन गया है। यह भ्रष्ट गुटतंत्रों की जड़ों को सींचता है। यह संकीर्णता तथा रूढ़िवादी शक्तियों को पालता- पोसता है। यह द्विराष्ट्र सिद्धान्त को परोक्ष रूप से स्वीकार करता है। यह अलगाववादी भावनाओं का प्रजनन- केन्द्र है। यह नौजवानों के मन में मिथ्या मनोवृत्तियों का कचरा भरता है। यह संकीर्ण लीकों तथा संकीर्ण निष्ठाओं को जन्म देता है। यह प्रादेशिक तनावों तथा संघर्षों को पनपाता है; और, जिस स्वायत्तता को पाने का सपना देखा जाता है, उसे व्यवहार में प्राप्त नहीं किया जा सकता।

कश्मीर के विशिष्ट व्यक्तित्व तथा विशिष्ट संस्कृति की रक्षा इस अनुच्छेद के बिना भी की जा सकती है। यह समाज को पीछे की ओर धकेलता है और ऐसी परिस्थितियाँ पैदा करता है जिनमें महिलाएँ यदि राज्य से बाहर के नागरिकों से विवाह कर लेती हैं तो उनके अधिकार छिन जाते हैं और राज्य में चालीस वर्ष से भी अधिक समय से रह रहे लोगों को प्राथमिक मानवीय तथा लोकतंत्रीय अधिकार नहीं मिल पाते। और सर्वोपरि,वह भारत की आवश्यकता, वास्तविकता और उसकी विशालता तथा विविधता के विराट् चौखटे में फिट नहीं बैठता। आज भारत को क्षुद्र संप्रभु राज्यों की आवश्यकता नहीं है। वे तो उसकी भावनाओं तथा आकांक्षाओं का ही रक्त चूस लेंगे और उसे दुच्चे तानाशाहों के हाथों में छोटे- छोटे पराश्रयी गणराज्य बनाकर रख देंगे। उसे तो आवश्यकता है एक नयी राजनीतिक, सामाजिक, तथा सांस्कृतिक संरचना के संयंत्र की जिसमें बहुलवाद तथा सहिष्णुता, सत्य तथा परोपकार, निष्पक्षता तथा न्याय और करुणा तथा वसुधैव कटुम्बकम् की महान् तथा अति पावन एवं प्राचीन परम्पराओं को गलाकर एवं शुद्ध करके एक ऐसे सशक्त तथा सजीव साँचे- ढाँचे मे ढाला जा सके जो भारत के समस्त कोटि- कोटि जन के लिए सच्चे स्वास्थ्य, सच्चे लोकतंत्र तथा सच्चे पुनर्जागरण की व्यवस्था कर सके।

कश्मीर की करुण पुकार

भारतवासियों से कश्मीरी शरणार्थियोंकी अपील

प्यारे भाइयो तथा बहिनो,

आपने हमारे बारे में, हमारी दयनीय दशा के बारे में सुना होगा । आपने दूरदर्शन पर राजधानी में हमारे प्रदर्शनों को भी देखा होगा । निश्चय ही आप में से बहुतेरों ने उन परिस्थितियों के बारे में पढ़ा होगा जिनमें कश्मीर घाटी से भागने के अतिरिक्त हमारे पास कोई विकल्प नहीं रह गया था ।

हमारे ऊपर यह विकल्प पाकिस्तान के संकेतों पर नाचने वाले आतंकवादियों ने थोपा । उन्होंने कश्मीर पर अपनी हुकूमत का झंडा गाड़ दिया है । उन्होंने आतंक का साम्राज्य स्थापित कर दिया है । वहाँ असंख्य निर्दोष मानवों को मौत के घाट उतार दिया गया है । वहाँ हत्या और विध्वंस का नंगा नाच हो रहा है । सरकारी तथा गैर- सरकारी भवनों, यहाँ तक कि विद्यालयों को भी बम से उड़ाया जा रहा है ।

हम कश्मीर को छोड़ कर कहीं और नहीं जाना चाहते थे । हम अपनी जन्मभूमि को, अपने कश्मीर को, उसकी औघड़दानी धरती के कण- कण को, जिसने हम सभी को पालपोसकर बड़ा किया है , जी- जान से प्यार करते हैं । उसके शीतल तथा निर्मल जल की हर बूँद पर हम अपने प्राण न्यौछावर करते हैं । उसकी हरी- हरी घास की हर पत्ती हमारे मन में समायी हुई है । अपनी जननी जन्मभूमि से बिछुड़ने की असहनीय पीड़ा को हम शब्दों में व्यक्त नहीं कर सकते । हम चाहते थे कि हम अपनी पितृभूमि को, अपने सुखदायी घरों को, अपने पीढ़ियों पुराने पड़ोसियों तथा इष्ट- मित्रों को न छोड़ें । परन्तु कैसा दुर्भाग्य ! क्रूर नियति का हम पर कैसा क्रूर प्रहार ! असाधारण कठिनाइयों के उपरान्त भी अपनी जन्मभूमि में डटे रहने की हमारी सहज इच्छा अलगाववादी हिंसा के प्रचंड प्रलयंकारी प्रवाह में विलीन हो गयी । कैसा दुर्भाग्य ! प्रचंड प्रवाह का प्रकोप बढ़ता ही जा रहा है और उसे शांत करन के लिए कोई प्रभावी उपाय नहीं किये जा रहे हैं । जिस घाटी में कभी शांति का साम्राज्य था, उसके चप्पे- चप्पे को, उसके हर जिले तथा प्रदेश को इस प्रवाह के भीषण थपेड़े

बेरोकटोक रौंद रहे हैं। विछोह की हमारी व्यथा का कोई अन्त नहीं था। हमारा हृदय विदीर्ण हो रहा था। हमारी भव्य पर्वत- श्रेणियाँ मौन तथा उदास थीं। हमारे घायल मन उदास थे और हममें से प्रत्येक ने खून के आँसू वहाये थे।

हम शरणार्थी अपने घर- द्वार को, अपने खेत- खलिहान को , अपनी नौकरी- चाकरी तथा कारोबार को छोड़ने पर विवश हो गये थे। हथियारबंद आतंकवादियों ने दिन- दहाड़े अकारण हमारे अनेक प्रियजनों की हत्या कर दी जबकि हमने उन्हें अप्रसन्न होने का कभी रंचमात्र भी अवसर नहीं दिया। इतिहास साक्षी है और मुस्लिम भाई भी इस बात को स्वीकार करेंगे कि संकट और संघर्ष की हर घड़ी में हमने उनका साथ दिया है और अपनी जन्मभूमि की शांति तथा उसके कल्याण के लिए भरसक प्रयास किया है।

फिर भी मुस्लिम उग्रवादियों ने हमारे परिवारवालों को, हमारे बच्चों को पोस्टरों द्वारा डराया- धमकाया। उनमें छापा गया कि कोई भी हमारे जान- माल की रक्षा नहीं कर सकेगा।

उन्होंने न दिन देखा न रात, हमारे घरों पर पत्थर बरसाये, हमारी खिड़कियों के शीशे तोड़े और हम पर गालियों तथा अपशब्दों की बौछार की। उन्होंने हममें से अनेक को हमारे सीने पर बन्दूक तानकर राष्ट्र- विरोधी प्रदर्शनों में भाग लेने पर विवश किया। इन प्रदर्शनों की आड़ लेकर वे सुरक्षाकर्मियों पर गोलियाँ चलाते थे ताकि प्रत्युत्तर में गोलियाँ चलें। इससे हमारे अपने ही प्राण संकट में पड़ जाते थे।

हर मस्जिद में लगे लाउडस्पीकरों पर वे चीख- चीख कर हमें सुनाते थे— 'काफिरों को मार दिया जायेगा, कश्मीर इस्लामी देश बन जायेगा, जो इसे स्वीकार नहीं करेगा उसे गद्दार समझा जायेगा, भारत के एजेण्ट हिन्दुओं को मार दिया जायेगा।'

खुलेआम 'भारत के एजेण्ट' कहे जाने वाले हम लोग हिंसा से त्रस्त कश्मीर में कैसे बने रह सकते थे ? बड़ी विकट स्थिति थी। वहाँ नये राज्यपाल के रूप में जगमोहन के पधारने तक राज्य- प्रशासन एकदम ठप्प हो चुका था। यहाँ तक कि आतंकवादियों ने (कट्टरतावाद की शैली में) धौंस जमाकर सभी सिनेमाघर, वीडियो तथा ब्यूटी पार्लर , शराब की दुकानें, शराबघर बंद करा दिये थे। उन्होंने श्रीनगर

स्टेडियम में पाकिस्तान के राष्ट्रीय दिवस पर एक सशस्त्र परेड का आयोजन किया और उदण्डतापूर्वक वहाँ पाकिस्तानी झंडा फहरा दिया। उन्होंने भारतीय बैंकों की शाखाओं, डाकघरों, केन्द्रीय सरकार के कार्यालयों पर बम फेंके। उन्होंने भारतीय बैंकों की शाखाओं तथा अन्य कार्यालयों पर दबाव डालकर उनके आगे के प्रवेश- द्वारों से 'भारतीय' शब्द को हटवा दिया। उन्होंने कश्मीर के वरिष्ठ पुलिस अधिकारियों से सलामी ली। बन्दूक दिखाकर उन्होंने तथाकथित सिविल कर्फ्यू अर्थात् पूर्ण बंद लगा दिया। जिन कतिपय लोगों ने उस आदेश के उल्लंघन का साहस किया, उनकी निर्ममता से हत्या कर दी गयी। उन्होंने सरकारी तथा गैर- सरकारी भवनों पर तथा राज्य तथा केन्द्र के कार्यालयों पर भी अलगाववादियों का झंडा फहरा दिया। उन्होंने महत्वपूर्ण राष्ट्रीय दूर (टेली) प्रसारणों के अवसर पर बिजली की आपूर्ति बन्द कर दिये जाने का आदेश दिया।

कश्मीरी पंडितों तथा सिख अल्पसंख्यकों को सशस्त्र अलगाववादियों ने जान से मार डालने की धमकी दी। सम्प्रदायनिरपेक्ष, नरमपंथी, राष्ट्रवादी तथा वामपंथी मुस्लिम राजनीतिक कार्यकताओं में से कुछ की निर्ममता से हत्या कर दी गयी तथा अन्य के घरों पर बम फेंके गये पर वे मौत के जाल से बाल- बाल बच गये और बचे- खुचे कार्यकर्ताओं को पत्र तथा दूरभाष से धमकी दी जाती रही कि उनका भी वही हश्र होगा जो मौत के घाट उतारे गये उनके मुस्लिम साथियों का हुआ है। क्या इन सब लोगों के मानस में पूर्वोक्त परिस्थितियाँ विश्वास उत्पन्न करने में सहायक तथा सक्षम थीं?

सुरक्षित स्थानों की खोज में हमारा वास्तविक प्रस्थान, हमारी यात्रा मानसिक विछोह से कम त्रासदायी नहीं थी। वर्षों के जी- तोड़ परिश्रम से अर्जित अपनी सम्पत्ति को, जिसे हमारे परिवार वालों ने बड़े चाव से सहेज कर रखा था, हमें वहीं छोड़ना पड़ा। यहाँ तक कि अपने गरम कपड़े, कम्बल तथा दैनिक उपयोग की वस्तुएँ भी हम अपने साथ नहीं ला सके। कारण यह था कि उन्हें बाँधते समय यदि हाथ में बंदूक थामे और लिबलिबी पर अपनी अंगुली जमाये शिकारी कुत्तों की भाँति घूमने वाले जंगजुओं की गिद्ध दृष्टि हमारे ऊपर पड़ जाती तो वे प्रस्थान करने वाले को तुरंत उसके उस घर में लौट जाने का आदेश दे देते जो कहने को उसका घर था, पर

उसकी कब्र बन सकता था। जब हम सुरक्षित स्थानों पर पहुँचे तो उसके बाद हममें से कुछ यह जानकर सिहर उठे कि आतंकवादियों ने हमारे घरों के बाहरी भागों पर कटा का (X) चिह्न लगा दिया था। कश्मीर के आतंकवादियों के शब्दकोश में उसका अर्थ था— यह खाली घर हमारा है। छत्ताबल (श्रीनगर) में कुछ ऐसे घरों को आग लगा दी गयी। स्थिति विकट थी। एक ओर कुँआ तो दूसरी ओर खाई। यदि अपने प्राण बचाने के लिए हम अपने घरों को छोड़ते हैं तो हमारे घर हमारे नहीं रहेंगे और यदि हम अपने घरों को नहीं छोड़ते तो हमारे प्राणों के लाले पड़ जायेंगे।

अपने ही घरों से निर्वासित, अपने घरों की सुख- सुविधा से वंचित,अपनी जन्म- भूमि और अपने इतिहास, अपनी परम्परा तथा संस्कृति से उजाड़े गये हम शरणार्थी कहाँ जाते ?... निश्चय ही राज्य अथवा राज्य से बाहर के किसी ऐसे स्थान पर , जो जीवन- सुरक्षा की गारंटी देता पति- पत्नी और उनके नवजात शिशु को , कालेज जाने वाले पुत्र तथा कामकाजी पुत्री को, वृद्ध पिता तथा अपंग माता को, किसान तथा कार्यालय- कर्मचारी को, व्यापारी तथा व्यवसायी को, डाक्टर तथा अधिवक्ता को,अध्यापक तथा विद्वान् को, कश्मीरी पंडितों के उस छोटे से समुदाय के सभी लोगों को जो कश्मीर के इतिहास में आदिकाल से वहाँ रहता चला आ रहा था और उसके बहुआयामी तथा बहु- वैभवशाली जीवन का अभिन्न अंग बन गया था।

अपनी जन्म- भूमि से विछोह तो दुखदायी था ही, पर उससे भी अधिक दुखदायी है अब उससे सैकड़ों मील दूर ऐसे उष्ण जलवायु में रहना जिसका तापमान नितांत भिन्न है। वहाँ वर्षा- जल की नमी वाले खचाखच शिविर हैं , गंदगी है, नाममात्र की सुविधाएँ हैं और उससे भी भयावह यह कल्पना है कि हममें से प्रत्येक का और समूचे पंडित समुदाय का क्या भविष्य होगा ? क्या हम कभी अपनी जन्म- भूमि में वापस जा सकेंगे ? भारतवासियो, केवल आपके पास ही इस दारुण प्रश्न का उत्तर है।

अन्ततः जिन परिस्थितियों ने हमें कश्मीर छोड़ने पर विवश किया, वे रातोंरात तो उत्पन्न नहीं हो गयीं। धर्मान्धता, घृणा और असहिष्णुता का तथा विमति, उदारवाद, तर्क और प्रबोध की आवाज के दमन का जमात- ए- इस्लामी का उन्मादपूर्ण कट्टरवादी अभियान कश्मीर में दावानल की भाँति वर्षों से फैलता रहा था। कोई भी इस दावानल को बुझाने के लिए आगे नहीं आया। यह दावानल अबाध

रूप से नगर से ग्राम तक, एक ग्राम से दूसरे ग्राम तक, एक खेत से दूसरे खेत तक और एक घर से दूसरे घर तक फैलता रहा । कश्मीर के भीतर कट्टरतावादी आन्दोलन के बीचोंबीच स्थित चीन्हे जा सकने वाले स्रोत- केन्द्रों के पास ईरान से भड़काने और उकसाने वाला साहित्य निरन्तर आता रहा तथा मध्य- पूर्व के कुछ देशों से विपुल धनराशि निरंतर निर्बाध रूप से आती रही, पर अधिकारियों ने उसके प्रति अपनी आँखें मूँद लीं । न तो कभी कट्टरवादिता में निहित वास्तविक दुष्प्रयोजन को उजागर करने के लिए कोई संगठित प्रयास किये गये और न ही कोई ज्ञानवर्धक अभियान छेड़ा गया ताकि सहिष्णुता तथा सद्भाव, शांति और भाईचारे पर आधारित कश्मीर की अति प्राचीन चिति को नष्टभ्रष्ट करने के उसके प्रयोजन का भांडा फूट सकता ।

जमात- ए- इस्लामी मदरसों में, जिन पर कभी प्रतिबंध लगा दिया गया था पर बाद में रहस्यमय परिस्थितियों में उसे हटा लिया गया था, आशु प्रभावित होने वाले किशोरों के मानस में धर्मान्धता का विष कूट- कूट कर भरा गया । इन मदरसों में उन्मादी कट्टरतावादियों ने जानबूझ कर यह प्रयास किया कि इन किशोरों को विरसे में मिली जन्मजात सहिष्णुता की कश्मीरी संस्कृति के अंतिम अवशेषों को समूल नष्ट कर दिया जाये । इन्हीं (इस्लामी) स्कूलों में वर्तमान धर्मान्धों के काले मध्ययुगीन मानस का निर्माण किया गया ।

भले ही आज यह बात विश्वसनीय न दीख पड़े पर जंगजुओं के उग्र उत्पातों से बहुत पहले ही जमात- ए- इस्लामी को यह देखकर हर्ष हुआ था कि उनके अभियान बिना किसी बाधा के चल रहे थे क्योंकि न तो प्रशासन ने और न ही मुख्य धारा के राजनेताओं ने उन्हें चुनौती दी थी । ये कैसे दिल दहलाने वाले सिद्ध तथ्य हैं कि जमात ने अपने स्कूलों का जाल फैलाया और हर कस्बे, हर गाँव तथा हर जिले के घरों में भड़काने वाला कट्टरतावादी साहित्य भेजा और इस कार्य में उसे प्रत्यक्ष तथा परोक्ष समर्थन और प्रोत्साहन मिला ! ये कैसे दिल दहलाने वाले सुविदित तथ्य हैं कि कश्मीर की सशस्त्र पुलिस की दो बटालियनें तैयार की गयीं जिनमें जमात द्वारा प्रशिक्षित नौजवानों की प्रधानता थी ! जमात संवर्ग प्रशासन के प्रमुख अंगों में, विशेषतः व्यापक जन- सम्पर्क वाले शिक्षा, सहकारिता, कृषि आदि विभागों में घुस गया ।

१९८६ में कश्मीर के सार्वजनिक, राजनीतिक तथा प्रशासनिक जीवन में सम्प्रदायीकरण का स्तर अति उच्च हो गया। १९४७ के बाद के राज्य के इतिहास को विभाजित करने वाली वह स्पष्ट रेखा थी। उस समय उपद्रवकारियों को सुनियोजित तथा सुसंगठित षड्यंत्र के अधीन दक्षिण कश्मीर के अल्पसंख्यकों के विरुद्ध मनमानी करने की खुली छूट दे दी गयी। उनके घरों को लूट लिया गया था।

पूजा- स्थलों को अपमानजनक ढंग से अपवित्र किया गया। विषवमन करने वाला दक्षिण कश्मीर का एक नया मुल्ला जिसे राजनीतिक सहयोग, समर्थन तथा संरक्षण प्राप्त था, अपने भड़काऊ तथा उन्मादी उपदेशों द्वारा इन अपमानजनक कुकृत्यों के लिए भूमिका तैयार कर चुका था। दक्षिण कश्मीर के १९८६ के अनेक उपद्रवकारियों को आज भयावह अलगाववादी आतंकवादी इकाई के जंगजुओं के रूप में पहचाना जाता है। १९८६ के कृत्रिम रूप से निर्मित सम्प्रदायवाद की कुत्सित भावनाओं से ही मुस्लिम यूनाइटेड फ्रंट (एम यू एफ) के नये राजनीतिक संगठन का जन्म हुआ। इस फ्रंट के अनेक संवर्गों को आज बंदूकधारी जंगजू माना जाता है।

घाटी में वर्तमान परिस्थितियाँ रातोंरात तो पैदा हो नहीं गयीं। यह तर्क तो नितांत बेतुका होगा कि भारत सरकार को वहाँ की घटनाओं की जानकारी नहीं थी। और फिर भी उसने मुँह फेर लेने का निश्चय किया, जबकि कश्मीरी हिन्दुओं तथा भारत संघ के विरुद्ध अंतिम युद्ध की घोषणा करने के लिए मुस्लिम कट्टरतावादियों ने घाटी के जीवन के हर क्षेत्र मे अपनी स्थिति सुदृढ़ कर ली। राज्यपाल के रूप में श्री जगमोहन ने विनाश को रोकने तथा इस्लामी कट्टरपंथियों के कुचक्र को विफल करने का प्रयास किया और वे अलगाववादियों के लिए अभिशाप बन गये। लेकिन जब उनका प्रशासन कठोर उपाय करने लगा तो उन्हें अभद्रता से वापस बुला लिया गया। हम हतप्रभ तथा असहाय से देखते रह गये कि जगमोहन के विरुद्ध सामूहिक एवं समवेत अभियान के आगे हमारी सरकार ने घुटने टेक दिये और हमें पक्का विश्वास हो गया कि सत्ता के उच्चतर सोपानों पर प्रभाव रखने वाले कुछ अमंगलकारी ग्रह घाटी में अलगाववादी माँगों के लिए मार्ग प्रशस्त करने का प्रयास कर रहे थे। हमें मुस्लिम आतंकवादियों के कोप का प्रथम लक्ष्य बनाया गया क्योंकि हम कश्मीर की सम्प्रदायनिरपेक्ष सांस्कृतिक परम्पराओं के प्रतीक थे। अतः हम साग्रह अपने ही बन्धु देशवासियों से अनुरोध करते हैं कि वे समय रहते स्थिति के बारे में सचेत एवं सजग हो जायें ताकि उन्हें बाद में पश्चात्ताप न करना पड़े। यदि हमारी ओर से समयोचित

कार्यवाही न की गयी तो हो सकता है कि देश के हाथ से घाटी ही निकल जाये। कश्मीर का गँवा देने से न केवल हमारी खंडित हो चुकी मातृभूमि का स्वरूप और अधिक दुरूप हो जायेगा बल्कि राष्ट्र के रूप में हमारे अस्तित्व पर भी उसके अतिगम्भीर कुप्रभाव पड़ेंगे। उससे तो भारत में सम्प्रदायनिरपेक्षता का जनाजा ही निकल जायेगा।

वर्तमान कष्ट झेलकर तो हम अपनी देशभक्ति का तथा अपनी सांस्कृतिक परम्परा के प्रति गहन निष्ठा का मूल्य चुका रहे हैं।

कश्मीर में हमारी सुरक्षित वापसी न केवल हमारी अपनी सुख- शांति के लिए बल्कि कश्मीर को भारत का अट्ट अंग बनाये रखने के लिए भी अति आवश्यक है। हम सबको यह अनुभूति करनी ही होगी कि कश्मीर का संघर्ष कश्मीरी का नहीं बल्कि हर भारतीय का संघर्ष है।

कश्मीर बचाओ मोर्चा

द्वारा

राष्ट्र के नाम अपील

प्यारे देशवासियो,

यह तो आप जानते ही हैं कि गत दो वर्षों तथा उससे भी पहले से कश्मीर घाटी में घोर नृशंसतापूर्ण तथा अपमानजनक घटनाएँ हो रही हैं। लगभग ३ लाख हिन्दुओं को तथा मुसलमानों को भी वहाँ से खदेड़ दिया गया है। वे अपने ही देश में शरणार्थी बन गये हैं और कामचलाऊ शिविरों में बड़ी कठिनाई से स्वयं को जीवित रखने का प्रयास कर रहे हैं। बंदूकधारी कट्टरपंथियों ने बीसियों मंदिरों को अपवित्र कर दिया है, राज्य सरकार की मौन सहमति से सैकड़ों स्थानों के नाम बदल दिये हैं, और आतंक का साम्राज्य स्थापित कर दिया है। बलात्कार, आगजनी, हत्या तथा अपहरण का बोलबाला हो गया है। संघ तथा राज्य की सरकारों की शासन- सत्ता तो वहाँ कब की समाप्त हो गयी है।

पकड़े गये उग्रवादियों ने जो स्वीकारोक्तियाँ की हैं, उनसे गुप्तचर समुदाय के इस निष्कर्ष की पूर्णतया पुष्टि हो गयी है कि आतंकवादी गतिविधियाँ उन मुस्लिम नौजवानों की काली करतूतें हैं जिन्हें पाकिस्तान ने प्रशिक्षण, हथियार तथा पैसा दिया है। १९४७- ४८ तथा १९६५ के युद्ध में कश्मीर को हथियाने में असफल हो जाने के बाद अब पाकिस्तान ने विध्वंस तथा आतंकवाद का सहारा लेकर भारत के साथ परोक्ष युद्ध छेड़ दिया है। मदरसों की श्रृंखला तथा अन्य माध्यमों द्वारा धर्मान्धता तथा पुनरुत्थानवाद को भड़काने वाले जमात- ए- इस्लामी जैसे संगठनों का उसे मूल्यवान सहयोग प्राप्त हुआ है।

इस घिनौने षड्यंत्र का लक्ष्य साम्प्रदायिक आधार पर हमारी मातृभूमि का दूसरा विभाजन कराना ही है। वास्तव में पाकिस्तान के राष्ट्रपति ने कश्मीर के प्रश्न के बारे में स्पष्ट रूप से कहा है कि वह विभाजन का शेष रह गया 'एजेंडा' है। प्रत्यक्ष है कि लद्दाख तथा जम्मू क्षेत्रों के लोग इस बारे में चिंतित हैं कि कहीं वे सिर पर मंडराते विनाश के ग्रास न हो जायें। इसी कारण लद्दाखी लोग संघ- राज्यक्षेत्र के स्तर के लिए

आन्दोलन कर रहे हैं और जम्मूवासी भारत संघ के साथ एकीकरण की माँग कर रहे हैं।

पाकिस्तान तथा घाटी में उसके चट्टे-बट्टे के घोर निर्लज्जतापूर्ण षड्यंत्र को देखते हुए भी मानव अधिकारों के कुछ स्वयंभू ठेकेदार अब भी गलत सूचना प्रसार के अभियान में जुटे हुए हैं। इस अभियान का निश्चित उद्देश्य हमारे उन सुरक्षा-बलों को बदनाम करना है जो भारी कठिनाइयों के बावजूद विध्वंसक शक्तियों के साथ जूझ रहे हैं। भारतीय प्रेस परिषद् द्वारा भेजे गये दल ने हाल ही में जो रिपोर्ट दी है उसने उस शैली को पूर्णतया नंगा कर दिया है जिसे अपना कर नितांत झूठे आरोप गढ़े गये और उनका प्रचार-प्रसार किया गया। रिपोर्ट का प्रचार-प्रसार समाचारपत्रों में किया गया है और उसे पुस्तक के रूप में भी प्रकाशित किया गया है। किन्तु 'मानव अधिकारों' के इन ठेकेदारों ने अभी तक इसे आवश्यक नहीं समझा है कि वे अपने आचरण के बारे में स्पष्टीकरण दें कि सुरक्षा-बलों को उन्होंने क्यों बदनाम किया।

भारत की क्रमागत सरकारों ने भी यह आपराधिक उपेक्षा की है कि वे न तो समस्या के आकार तथा विस्तार का आकलन कर सकीं और न ही उसके समाधान के लिए कोई प्रभावी नीति निर्धारित कर सकीं। वास्तव में यह धारणा फैल चुकी है कि अलगाववादियों के आगे घुटने टेकने के लिए सरकार केवल किसी अनुकूल अवसर तथा सूत्र की ताक में है जैसा कि और अधिक स्वायत्तता प्रदान करने के बारे में हाल के वक्तव्य से पता चलता है।

हमें बड़े खेद के साथ यह कहना पड़ रहा है कि मुस्लिम बुद्धिजीवियों तथा प्रतिनिधि संगठनों ने इस प्रश्न के बारे में मौन रहने का रवैया अपनाया है। संघ में कश्मीर की सदस्यता में उनकी यदि अधिक नहीं तो उतनी साझेदारी तो है ही जितनी कि भारतीय राष्ट्र के किसी अन्य वर्ग की है, और अब समय आ गया है कि वे अपना मौन तोड़कर सजग हो जायें। जैसा कि इस्लामी सम्मेलन के संगठन की हाल की बैठक से स्पष्ट हो चुका है, मुस्लिम देशों को गुमराह करने का पाकिस्तान का अभियान सफल रहा। अतः अब और भी आवश्यक हो गया है कि देश को एक बार फिर विभाजित करने का विरोध भारत के मुस्लिम बुद्धिजीवी तथा नेता साहस के साथ करें।

एक पूरे दिन के विचार- विमर्श के बाद हम यह अनुभव करते हैं कि अपने उन देशवासियों से, जो स्थिति की गंभीरता को अनुभव कर चुके हैं, साग्रह अपील करें कि वे हमारे इस प्रयास में हमारा साथ दें कि सरकार को स्थिति का समुचित ढंग से सामना करने के लिए विवश किया जाये।

हम बंधु नागरिकों से अपील करते हैं कि वे देश भर में 'कश्मीर बचाओ' आन्दोलन छेड़ें। इसके लिए वे शांतिपूर्ण सभा करें, प्रदर्शन और अन्य लोकतांत्रिक उपाय करें तथा निम्नोक्त माँगों पर आग्रह करें :

एक : इस मास के समाप्त होने से पहले ही सरकार सुस्पष्ट घोषणा करे कि :

क - जिन लोगों ने राज्य के विरुद्ध हथियार उठाये हैं वे विधिबहिष्कृत हैं और उन्हें वैसा समझा जायेगा।

ख - उनके साथ तभी वार्ता की जायेगी जब वे हथियार डाल देंगे और आतंकवादी गतिविधियाँ समाप्त कर देंगे।

ग- अपहृत निर्दोष व्यक्तियों की वापसी के लिए आतंकवादियों से कोई वार्ता नहीं की जायेगी। अदलाबदली की नीति की विफलता तो पहले ही उजागर हो चुकी है। वास्तव में इतना तो स्वयं सरकार ने स्वीकार किया है।

घ- यदि सरकारी क्षेत्र के तथा सार्वजनिक उपयोगिता वाले और अन्य उपक्रमों के कर्मचारियों का अपहरण होता रहे और उसके फलस्वरूप नागरिक आपूर्तियों में कोई गड़बड़ी हो तो उसके लिए आतंकवादियों को उत्तरदायी ठहराया जायेगा।

ड- घाटी को फिलहाल किसी भी प्रकार की कोई पूरक सहायता (सब्सिडी) न दी जाये, क्योंकि अब तक यह स्पष्ट हो चुका है कि इसका अधिकांश आतंकवादियों को मिल रहा है।

च- सुरक्षा बल पैसे तथा हथियार आपूर्ति के उनके मार्गों को प्रभावी रूप से अवरुद्ध कर देंगे।

दोः स्थानीय प्रशासन से तोड़- फोड़ करने वाले सभी तत्वों को तुरंत बाहर करना ही होगा।

तीन : चूँकि नागरिक प्रशासन घाटी में आतंकवादी तथा अलगाववादी शक्तियों का सामना करने में असफल हो गया है, अतः सरकार को इस बारे में गंभीरता से विचार करना चाहिए कि क्या अब समय नहीं आ गया है कि स्थिति से प्रभावी ढंग से निपटने के लिए सेना को बुला लिया जाये।

चार : घाटी के विद्रोह में बड़े पैमाने पर पूर्णतया सिद्ध पाकिस्तान की भागीदारी के कारण शिमला समझौता मूल भावना तथा शब्द दोनों की दृष्टि से कोरी बकवास बनकर रह गया है। अतः भारत सरकार इस बारे में स्वयं को स्वतंत्र अनुभव करे कि खतरे का सामना करने के लिए जो भी कार्यवाही वह आवश्यक समझे, उसे करे और नियंत्रण- रेखा के बंधन में न बँधी रहे।

पाँच : घाटी के विनाश की जड़ के रूप में अनुच्छेद ३७० हमारे सामने सुरसा की भाँति खड़ा है। उसका उद्देश्य तो कश्मीर की पहचान की रक्षा करना था पर वह तो पाकिस्तान के समर्थन वाले आतंक तथा अलगाव के साम्राज्य की स्थापना के लिए मार्ग प्रशस्त कर रहा है। उसे अविलम्ब निरस्त कर दिया जाना चाहिए।

छ : ऐसे प्रभावी उपाय किये जायें ताकि सभी कश्मीरी शरणार्थी घाटी में अपने- अपने घरों को सम्मान तथा सुरक्षा के साथ लौट सकें तथा उन्हें पूरी गारंटी मिल सके कि उनकी संस्कृति तथा सम्मान पर आँच नहीं आयेगी। भारत के इन असहाय नागरिकों को तुरंत समुचित सहायता दी जाये।

हस्ताक्षरकर्ताओं की सूची

१. श्री नानाजी देशमुख	अध्यक्ष, दीनदयाल शोध संस्थान
२. श्री त्रिलोकीनाथ चतुर्वेदी	भूतपूर्व नियन्त्रक एवं महालेखापरीक्षक, भारत सरकार
३. श्री ए. पी. वेंकटेश्वरन	भूतपूर्व विदेश- सचिव, भारत

४. श्री ए. के. राय	भूतपूर्व राजदूत (सीरिया में)
५. श्री ब्रजेश मिश्र	भूतपूर्व राजदूत— संयुक्त राष्ट्र संघ और चीन आदि में
६. श्री गिरिलाल जैन	भूतपूर्व सम्पादक, टाइम्स ऑफ इण्डिया
७. श्री स्वप्न दासगुप्त	संयुक्त (एसोसिएट) सम्पादक, द टेलिग्राफ, कलकत्ता
८. श्री आर. एन. कपूर	कुलपति, चित्रकूट ग्रामोदय विश्वविद्यालय
९. डा० डी. के. मूर्ति	भूतपूर्व कुलपति, कृषि विश्वविद्यालय
१०. श्री एस. एन. घोष	प्रमुख पर्यावरणविद्
११. डा. जगदीश सेट्टीगर	अर्थशास्त्री
१२. प्रो. बी. आर. ग्रोवर	भूतपूर्व निदेशक, भारतीय इतिहास अनुसन्धान परिषद्
१३. डा. स्वराज्य प्रकाश गुप्त	भूतपूर्व निदेशक, राष्ट्रीय संग्रहालय, इलाहाबाद
१४. प्रो. बी. आर. चौहान	भूतपूर्व संकायाध्यक्ष, विधि संकाय, हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय
१५. डा. सिद्धेश्वर भट्ट	अध्यक्ष, दर्शनशास्त्र विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय
१६. डा. मदनमोहन सांख्यधर	अध्यक्ष, राजनीतिशास्त्र विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय
१७. प्रो. आर. एस. निगम	भूतपूर्व वाणिज्य संकायाध्यक्ष, दिल्ली विश्वविद्यालय
१८. प्रो. एस. पी. अग्रवाल	भूतपूर्व गणित संकायाध्यक्ष, दिल्ली विश्वविद्यालय
१९. श्री शरदेन्दु मुखर्जी	रीडर, इतिहास विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय
२०. श्री देवेन्द्रस्वरूप	उपाध्यक्ष, दीनदयाल शोध संस्थान
२१. श्री द्वारकानाथ मुंशी	अध्यक्ष, अखिल भारतीय कश्मीरी समाज एवं संयोजक, कश्मीर बचाओ मोर्चा

परिशिष्ट

कुछ अति जघन्य हत्याएँ

घटना सं.१

श्री सर्वानन्द कौल प्रेमी (६४वर्ष) , अवकाश-प्राप्त अध्यापक, निवासी सोफ़शाली, जिला अनंतनाग ।

श्री वीरेन्द्र कौल (पुत्र) २७ वर्ष, केन्द्रीय सरकार के कर्मचारी । दोनों की हत्या दिनांक ३०-४-९० ।

श्री प्रेमी एक प्रख्यात कश्मीरी कवि तथा विद्वान थे । यद्यपि उनके परिवार वालों ने उनसे आग्रह किया कि दिनोंदिन बढ़ती हुई आतंकवादी गतिविधियों को तथा उनकी बिरादरी के लोगों की निर्बाध हत्याओं को देखते हुए उन्हें अपना गाँव छोड़ देना चाहिए लेकिन उन्होंने इंकार कर दिया क्योंकि अपने प्राणों से भी प्यारे कश्मीर की सम्प्रदाय-निरपेक्ष परम्पराओं के प्रति उनकी अटूट आस्था थी । वे जितने धर्मनिष्ठ थे, उतने ही उदार भी थे । उनका विश्वास था कि उस मुस्लिम-बहुल क्षेत्र में उनका बड़ा सम्मान है । परंतु अंततः उनका यह विश्वास उस समय चूर-चूर हो गया जब २६ अप्रैल के सायंकाल तीन आतंकवादी उनके घर में घुस आये और उन्होंने समूचे परिवार को एक ही कमरे में एकत्र होने का आदेश दिया । आतंकवादियों ने यह आदेश भी दिया कि वे अपनी समूची बहुमूल्य वस्तुएं यथा सोना, आभूषण,नकदी, पश्मीने के वस्त्र, साड़ी तथा शाल आदि भी अपने कमरे में ले आयें । नर-नारियों ने जो अन्य रत्न तथा आभूषण पहन रखे थे, उन्हें खींच-खींच कर उनके तन से उतार लिया गया । एक खाली सूटकेस में उन्हें भरने के बाद उन्होंने दुबले-पतले तथा अति मिठबोले श्री प्रेमी को आदेश दिया कि वे सूटकेस को उठाकर उनके पीछे पीछे चलें । रोते-बिलखते परिवार वालों से आतंकवादियों ने कहा था, "हम उसका कुछ नहीं बिगाड़ेंगे, वह लौट आयेगा ।" तभी भाग्य ने हस्तक्षेप किया और उनके पुत्र वीरेन्द्रपाल ने स्वयं अपनी ओर से अपने पिता के साथ चलने का प्रस्ताव रखा ताकि वह वृद्ध पुरुष को अंधेरी रात में मार्ग दिखाकर अपने साथ वापस ले आये । "अगर तुम्हारी मर्जी है तो तुम भी साथ चलो ", उन्होंने वीरेन्द्र से कहा । पिता तथा पुत्र दोनों को धकेल कर वे घर के

बाहर ले गये।

उसके बाद जो हुआ, उससे तो हिटलर के गुप्तचरों की भी गर्दन शर्म से झुक जायेगी। जब दो दिन के बाद उनके शव मिले तो बड़ा ही विकराल तथा वीभत्स दृश्य था। दोनों भौहों के बीच जिस स्थान पर श्री प्रेमी चन्दन का तिलक लगाया करते थे, वह लोहे की सलाख से छिदा पड़ा था और वहाँ की खाल उतार ली गयी थी। समूचे शरीर पर दहकती सिगरेट से दागे जाने के निशान थे। अंग- प्रत्यंग तोड़ दिये गये थे और पिता तथा पुत्र दोनों की आँखें निकाल ली गयी थीं। बाद में उन्हें फाँसी दे दी गयी और पूर्ण निश्चय करने के लिए उनके शरीर को गोलियों से छलनी भी कर दिया गया था।

और यह दुर्व्यवहार एक ऐसे व्यक्ति के साथ किया गया जिसके घर के पूजाघर में बड़ी श्रद्धा के साथ रखी कुरान शरीफ की भी एक दुर्लभ पाण्डुलिपि पायी गयी।

घटना सं. २:

श्री दीनानाथ मुजु (७५ वर्ष), अवकाश- प्राप्त सरकारी कर्मचारी, निवासी रावलपोरा, हत्या दिनांक ७ जुलाई, १९९०।

मुजु न केवल एक शिक्षाविद तथा सामाजिक कार्यकर्ता थे अपितु एक अति धर्म- परायण व्यक्ति भी थे। वे रावलपोरा के अपने घर में अपनी पत्नी के साथ रहते थे। अपने दिल्लीवासी डाक्टर बेटे के आग्रह के बावजूद वे कश्मीर छोड़ने को तैयार नहीं हुए। मुजु जे.कृष्णमूर्ति की दार्शनिक विचारधारा से प्रभावित थे। जब भी कृष्णमूर्ति भारत आते थे तो मुजु उनका व्याख्यान सुनने अवश्य जाते थे। हाल ही में वे कश्मीरी शैववाद के विश्वविख्यात विशेषज्ञ स्वामी लक्ष्मण जू के प्रवचन सुनने के लिए निशात के निकट उनके आश्रम में नियमित रूप से जाने लगे थे।

संभवतः यही वृद्ध पुरुष के सर्वनाश का कारण बन गया। ७ जुलाई को कुछ आतंकवादी सीढ़ी की सहायता से दीवार लाघंकर घर में घुस गये। उस समय रात का गहरा सन्नाटा था और वृद्ध दम्पति सो रहे थे। किन्तु उन्हें झकझोर कर जगाया गया। हत्यारों ने तब तक मुजु पर बार- बार छुरे के वार किये जब तक कि उनके प्राण नहीं निकल गये। उनकी वृद्धा पत्नी अपने पति के रक्त से रंजित हो गयीं।

घटना सं.३ तथा ४

प्रो.के.एल.गंजू (४० वर्ष), निवासी सोपोर, अध्यापक, कृषि कालेज

श्रीमती के.एल.गंजू, प्रो.के.एल. गंजू की धर्मपत्नी, अध्यापिका । दोनों की हत्या दिनांक ७- ५- १९९० ।

प्रो. गंजू सोपोर के निकट वाडोर के कृषि कालेज में प्राध्यापक थे । वे नेपाल के एक सम्मेलन में भाग लेकर वहाँ से अपनी पत्नी के साथ लौटे थे । एक जीप में कालेज के दो अधिकारियों को उनका स्वागत करने के लिए भेजा गया था । और उन्होंने स्वागत तो किया । उन्हें तथा उनकी पत्नी को जीप से बाहर घसीटकर सोपोर पुल के बीचोंबीच उन्होंने प्रोफेसर को गोली मार दी । फिर उन्होंने घायल प्रोफेसर को मरने के लिए झेलम नदी में फेंक दिया । दम्पति के साथ उनका एक नौजवान भतीजा भी था । उससे कहा गया कि या तो वह उस नदी में छलांग लगा दे जिसमें उसके 'अंकल' को समर्पित कर दिया गया था या चुपचाप देखता रहे कि वे उसकी आंटी की क्या गत बनाते हैं । उन्होंने तीन तक गिना और लड़का नदी में कूद गया । प्रो. गंजू का गोलियों से छिदा शव कुछ दिन बाद झेलम नदी के किनारे पाया गया । उनका भतीजा तैरना नहीं जानता था पर किसी प्रकार बच गया और निकल भागने में सफल हो गया । प्रो. गंजू की पत्नी का क्या हश्र हुआ, उसके बारे में सही जानकारी नहीं है । उनके बारे में परस्पर- विरोधी समाचार हैं । सरकारी समाचारों के अनुसार पुलिस अभी तक उनका पता नहीं लगा सकी है । लेकिन कुछ समाचारपत्रों में कहा गया है कि आतंकवादियों ने पहले उनके साथ सामूहिक बलात्कार किया और फिर बड़ी नृशंसता से उनकी हत्या कर दी ।

घटना सं. ५

श्री अशोक कुमार (३०वर्ष), निवासी पुल्वामा ।

अशोक कुमार का अपहरण जमात- ए- इस्लामी के आतंकवादियों ने किया । अपहरणकर्ताओं ने पहले उनके हाथ- पैर तोड़ दिये और फिर उन्हें कस्बे के बड़े चौक में ले गये । वहाँ उन्हें यह स्वीकार करने के लिए विवश किया गया कि वे माकपा (सी पी आई एम) के सदस्य हैं । फिर उनसे दया की भीख मांगने को कहा गया और

उन्होंने भीख मांगी भी । फिर भी आतंकवादियों ने उन्हें नहीं बख्शा । पहले उनकी आँखें निकाल ली गयीं और फिर उन्हें गोलियों से भून दिया गया ।

घटना सं. ६

श्री दामोदर स्वरूप रैना (६५ वर्ष), अवकाश- प्राप्त सरकारी कर्मचारी, निवासी डंबेलू (फ्रिज़ाल अनंतनाग), हत्या दिनांक २- ६- १९९० ।

आतंक्वादी उनके घर पर रात के सन्नाटे में पहुँचे । उन्होंने आतंकवादियों को टालने का प्रयत्न किया । उनकी पत्नी ने कहा कि वे घर में नहीं हैं । लेकिन आतंकवादी दरवाजा तोड़कर अंदर घुस गये और समूचे घर को छान मारा । जब उन्होंने देखा कि वृद्ध पुरुष मकान की सबसे ऊपर की मंजिल में एक कोने में छिपा बैठा है तो उन्हें घसीट कर बाहर निकाला । आतंकवादियों ने उनकी पत्नी की हृदय- विदारक गुहार तथा चीख- पुकार की कोई परवाह नहीं की । बेचारी ने चिल्ला चिल्ला कर पड़ोसियों से सहायता मांगी, लेकिन दूर खड़े - खड़े पथरायी दृष्टि से वे सब कुछ देखते रहे । कोई भी उनकी सहायता के लिए आगे नहीं बढ़ा । आज तक उस वृद्ध पुरुष का पता नहीं लगा है ।

घठना सं. ७

श्री तेज कृष्ण राजदान (३० वर्ष), सरकारी कर्मचारी, निवासी याचगाम, जिला बड़गाम, हत्या दिनांक १२- २- १९९० ।

राजदान पंजाब के किसी स्थान पर तैनात थे । वे छुट्टी लेकर अपने परिवार से मिलने के लिए श्रीनगर में गये हुए थे । उस दुर्भाग्पूर्ण दिवस पर उनका एक पुराना मुस्लिम साथी उनसे मिलन के लिए आया । वह उनके साथ उस समय काम करता था जब वे कश्मीर में रहते थे । दोनों श्रीनगर के लाल चौक जाने वाली मिनी बस में सवार हुए । जब मेटाडोर गांव कडाल पर रुकी तो राजदान के साथी ने अचानक पिस्तौल निकाल ली और सीधे उनकी छाती पर गोली दाग दी । इससे भी उसे सन्तोष नहीं हुआ । उसने अंतिम साँसें गिनते राजदान को गाड़ी से घसीटा और अन्य यात्रियों को आदेश दिया कि वे मरणासत्र व्यक्ति को बार- बार ठोकर मारें । फिर उनके शव को सड़क पर ऐसे घसीटा गया जैसे जमादार मरे कुत्ते को घसीटते हैं । फिर उनकी लाश को सबसे पास की मस्जिद में ले जाकर नुमाइश के लिए पटक दिया गया । वह

उसी प्रकार वहीं पड़ी रही। पुलिस तो उसे लेने घंटों बाद वहाँ पहुँची।

घटना सं. ८

श्री अशोक कुमार काजी (३० वर्ष), हस्तशिल्प विभाग के कर्मचारी, निवासी शेषयार, श्रीनगर, हत्या दिनांक २४- २- ९०।

उस अशुभ दिवस पर तीन आतंकवादियों ने उन्हें जाईदार मुहल्ले में उस समय घेर लिया जब वे खरीददारी करने के लिए बाजार जा रहे थे। आतंकवादियों ने उनके घुटनों पर गोली चलायी। वे गिर पड़े और घोर पीड़ा से कराहते हुए चीख कर सहायता की गुहार करने लगे। पर राहगीरों अथवा दुकानदारों में से कोई भी उनके पास नहीं फटका। उन्होंने तो बस मुँह फेर लिया जबकि वे उनके मुहल्ले के जाने- पहचाने व्यक्ति और अति सक्रिय एवं उत्साही समाज- सेवक थे। परपीड़ा- रस के अपने उन्माद में तीनों हत्यारे असहाय काजी के चारों ओर पैशाचिक नृत्य करने लगे। हत्यारों ने उनके बाल नोचे, उनके मुँह पर थप्पड़ों की वर्षा की और थूका भी। एक ने तो उनके ऊपर पेशाब भी कर दिया। उनके शरीर से रुधिर के फव्वारे छूट रहे थे और वे मृत्यु की प्रतीक्षा कर रहे थे; हत्यारों ने एक ही झटके में उनका काम तमाम नहीं किया और वे उनके तन की तड़पन और ऐंठन का भरपूर रस लेते रहे। तभी दूर से किसी पुलिस गाड़ी का साइरन बज उठा और उनकी गहन वेदना का करुण अंत हो गया, क्योंकि घबराहट में आतंकवादियों ने उनके पेट और छाती पर दनादन गोलियाँ उड़ेल दीं। बर्फ से ढकी सड़क पर उनके शव को छोड़कर वे नरपिशाच भाग खड़े हुए।

घटना सं. ९

श्री नवीन सप्रू (३० वर्ष), केन्द्रीय सरकार के कर्मचारी, निवासी हब्बा कदल, श्री नगर, हत्या दिनांक १७- २- १९९०।

वे अपने कार्यालय से लौट रहे थे कि कन्या कदल के निकट आतंकवादियों ने दिन दहाड़े उन पर गोलियों की बौछार कर दी। राहगीर उस भयानक दृश्य को देखते रहे। सप्रू गिर पड़े पर उनकी साँस चल रही थी। एक हिन्दू महिला ने जो संयोग से वहाँ थी, गिड़गिड़ाकर आतंकवादियों से उस नौजवान की जान बख्शने की चिरौरी की। उसे धकेल दिया गया। उन्होंने नवीन पर बार- बार गोलियाँ चलायीं पर किसी मर्मस्थल को अपना निशाना नहीं बनाया ताकि उनकी पीड़ा एकदम समाप्त न हो

जाये। भारी रक्तस्राव हुआ और नवीन जल से निकली मछली की भाँति तड़प- तड़प कर मर गये। पर आतंकवादियों की दृष्टि में परपीड़ा का रस तो अभी चखा जाना था। जब नौजवान के रिश्तेदार उनके शव को पुलिस गाड़ी में ले जा रहे थे तो आतंकवादी एक ट्रक में श्मशान घाट तक उसके पीछे- पीछे रास्ते भर नाचते- गाते हुए गये। उनका यह नाच- गाना चिता बुझने तक चलता रहा।

घटना सं० १०

श्री भूषण लाल रैना (२० वर्ष), शेरे कश्मीर मेडिकल इंस्टीट्यूट, सोरा के कर्मचारी, निवासी ओमपुरा, जिला बड़गाम, हत्या २८- ४- १९९०।

घाटी में आतंकवादियों की हिंसा से त्रस्त रैना ने अन्ततः अपनी माता के साथ कश्मीर छोड़ने का निश्चय कर लिया था। वे २९ अप्रैल को रवाना होना चाहते थे और एक दिन पहले से ही वे अपना सामान पैक करने लगे थे। जब वे अपने काम में जुटे थे तो आतंकवादियों का एक गिरोह दरवाजा तोड़कर उनके घर में घुस गया। उन्हें देख कर रैना की वृद्धा माता ने गिड़गिड़ा कर प्रार्थना की, "मेरे बेटे पर रहम करो, अरे, उसका तो बस विवाह होने ही वाला है। चाहो तो उसके बदले मेरी जान ले लो।" पर उनकी बात वे कहाँ सुनने वाले थे। उन्होंने एक तेज नुकीली लोहे की छड़ रैना के कपाल में भौंक दी। उन्हें घसीट कर बाहर ले जाया गया और एकदम नंगा करके एक पेड़ पर खूँटे से बाँध दिया गया। फिर उन्हें तिल- तिल करके तड़पा- तड़पा कर मारा गया जबकि वे चिरौरी करते रहे कि उन्हें गोली से उड़ा दें।